वादलों के पार

लेखक की अन्य रचनाएँ

नाटक

विषपान (पुरस्कृत)
उद्धार (पुरस्कृत) २ ००
छाया २ ००
स्वप्न-भंग (पुरस्कृत) १ ९५
शपथ (पुरस्कृत) २ ००
शतरंज के खिलाड़ी २ ५०
२ ००

कविता

रूप-दर्शन (सचित्र पुरस्कृत)
आँखों में १ ०
वन्दना के बोल २ ५०
पंजाब की प्रीत-कहानियाँ (सचित्र) २ ५०
रूप रेखा १ ००
प्रेस में

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

बादलों
के
पार

□ □
□

□
□ □

हरिकृष्ण 'प्रेमी'



आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली

देश और काल के कारण भी 'टेकनीक' में हेर-फेर होता रहता है। विज्ञान की उन्नति रंगमंच को भी पहले से अधिक सुविधा प्रदान कर रही है—इसलिए आज केवल पर्दों एवं थोड़ी दृश्य-रचना की सामग्री की सहायता से नाटकों का अभिनय करने का चलन नहीं है—इसलिए वहाँ विज्ञान रंगमंच की सहायता को तैयार खड़ा रहता है वहाँ बड़े सेटिंग्स वाले दृश्यों की रचना की जाती है और उनमें जल्दी-जल्दी दृश्यों का परिवर्तन अवांछनीय है बल्कि असुविधाजनक है। किन्तु भारत की—विशेष कर के हिन्दी के रंगमंच की तो स्थिति ही और है। यहाँ व्यावसायिक रंगमंच है कहाँ? तब हमें साधनहीनों के लिए ही नाटक लिखने पड़ते हैं—और उसी रचना-कौशल का प्रयोग करना पड़ता है जो नाटकों को सरलता से अभिनीत करा सके। मुझे इस बात का सन्तोष है कि मेरे नाटक भारतवर्ष के अनेक स्थानों पर सफलतापूर्वक खेले गए हैं—खेले जाते हैं।

शेष जो कहना है वह तो नाटक स्वयं ही कहेंगे।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

क्रम

बादलों के पार

पात्र-सूची

माधव

एक युवक राधा का प्रेमी बाद में संन्यासी।

राधा

एक युवती माधव की प्रेमिका बाद में विधवा।

कमल

राधा का देवर।

दुर्गा

राधा की सास।

पहला दृश्य

[हरिपुरा गाँव की शाम। ग्राम नदी के तट पर राधा बगल में खाली घड़ा दबाए आती है। राधा इस गाँव के एक कुलीन ब्राह्मण की पुत्री है। पिछले साल उसका विवाह हुआ था और वर्ष समाप्त होने के पहले ही उसकी माँग का सिन्दूर पुँछ गया। यौवन ने उसके अंग-अंग को गुलाब के फूल की तरह खिला रखा है। वैधव्य ने उसकी आँखों में विषाद के जो बादल छा दिए हैं उनसे वह और भी अधिक मधुर हो गई है। राधा घाट पर घड़े को रखकर बैठ जाती है और पानी में संध्या के सुनहले बादलों की जो छाया पड़ रही है उसे देखती रहती है।]

राधा—यह सुनहली बादलों की छाया नदी के पानी में कितनी सुन्दर जान पड़ती है किन्तु अभी अँधेरा छा जाएगा और इन लहरों में केवल आकाश के आँसू ही दिखाई देंगे। मेरा भविष्य एक भयानक अन्धकार है, उसमें इस बिजली-से-क्षण-जीवन को छिपाकर मैं कैसे चलूँगी?

[माधव का प्रवेश]

माधव—कौन राधा! तुम लौट आई हो।

राधा—हाँ मैं लौट आई हूँ लेकिन ...

माधव—यह बात मैंने से कहने की क्या आवश्यकता है राधा! तुम्हारी सिन्दूर-हीन माँग पूर्णिमा-विहीन अमावस्या बन-सूनी रह रही है।

[राधा रोती है]

तुम रोती हो राधा! लेकिन रोने से जीवन की घड़ियाँ कम नहीं होंगी। अन्दर का पाप नहीं धुलेगा।

राधा—लेकिन आँखों में भी ज्वालामुखी जलता है ...

माधव—वह आँखों के पानी से नहीं बुझ सकता। तुम्हें याद है अपने बचपन के दिन! इन नदी-किनारे के गाँवों में हम आँख-मिचौनी खेला करते थे

तुम मुझसे छिपती फिरती थीं मैं तुमसे ।

राधा—वे दिन भूले नहीं जा सकते । हम बड़े हुए और हमारा खेल भी बड़ा हुआ । मैं तुमसे छिपने के लिए विवाह की ओट में चली गई । मैं तुमसे मिलना तो चाहती थी लेकिन मैं कुलीन ब्राह्मण की कन्या और तुम कायस्थ के छोकरे, हमारे मिलन-मार्ग में समाज ने खाई खोद दी थी ।

माधव—हाँ राधा इसलिए हम केवल खेल सकते थे । एक-दूसरे से मिलने की इच्छा प्राणों में पाले हुए एक-दूसरे से छिपते फिरना ही हमारे भाग्य में बदा है ।

राधा—लेकिन माधव !

माधव—क्या राधा !

राधा—अब तो हम मिल सकते हैं । जिस ओट में मैं खड़ी थी वह गिर चुकी है । तुम आकर मुझे पकड़ लो ।

माधव—तुम यह क्या कहती हो राधा ! यह पाप !

राधा—पाप नहीं माधव यह स्वाभाविकता है । तुम्हारा प्रेम मेरी रग-रग में प्रवाहित हो रहा है । समाज ने मुझे किसी दूसरी काया से बाँध दिया था इसीसे तो मैं पराई नहीं हो गई । मैं सच कहती हूँ, माधव यह फूल अभी तक पवित्र है । उस तपेदिक के मरीज कुलीन ब्राह्मण ने इस पर अपने होंठ नहीं लगाए हैं । तुम इसे अपनी पूजा में ले लो ।

माधव—तुम हिन्दू-नारी हो !

राधा—नहीं मैं एक दुर्बल नारी हूँ । मुझे भूख लगती है । मुझे प्यास लगती है । मुझे भोजन चाहिए मुझे पानी चाहिए । तुम मेरे हृदय की भूख मिटाओ माधव ! तुम मेरे प्राणों की प्यास मिटाओ नहीं तो

माधव—नहीं तो !

राधा—नहीं तो मैं गन्दे नाले का पानी पिऊँगी । मैं पिशाचिनी हो जाऊँगी । संसार सोने के घड़े में विष लेकर खड़ा है ऐसा विष जो आत्मा को मार डालता है काया को नहीं ।

माधव—राधा !

राधा—माधव ! तुमने बचपन में मुझे पेड़ों पर चढ़कर तोड़-तोड़कर फल खिलाए हैं। अब जवान होने पर मुझे भूखों मारोगे ? लेकिन यह काया भूखी नहीं रहना चाहती। जो इसे भूखी रखना चाहते हैं वे प्रकृति के विरुद्ध चलते हैं। पराजित होते हैं। रात्रि के अन्धकार में वे अपनी भूख मिटाते हैं। मैं दिन के प्रकाश में

माधव—दिन के प्रकाश में समाज से विद्रोह करना चाहती हो। इतना बल तुममें हो सकता है, मुझमें तो नहीं है। मुझे तुम्हारा मोह बचपन से ही रहा है। मैं तुम्हारे अस्तित्व को अपने प्राणों में भरे हुए संसार में विक्षिप्त-सा घूम रहा हूँ। किसी कार्य में मेरा मन नहीं लग रहा। मैंने समझा था तुम दूर हो। स्मृति के आकाश में तुम्हारी मूर्ति को स्थापित करके उसके चरणों पर आँसुओं का अर्घ्य चढ़ाना ही मैं अपना धर्म समझता था। आज वह मूर्ति प्रकट होकर कह रही है तुम मुझे ले लो। मैं संसार की आँखों में पापी बनने से नहीं डरता लेकिन मेरी इष्टदेवि तुम क्यों अपने आसन से नीचे उतरती हो ? भारतीय नारी की महर्षियों ने जो कल्पना की है वह सांसारिक वासना से बहुत ऊँची है। तुम वहीं बैठो राधा !

राधा—तुम मेरा अपमान करते हो !

माधव—मैं अपमान नहीं करता राधा ! तुम स्वयं अपना अपमान कर रही हो। तुम अपने अन्दर छिपी शक्ति को नहीं पहचानती।

राधा—मेरा जीवन मेरा अपना है। समाज उसका स्वामी नहीं है। मैंने बचपन से तुम्हारे चरणों पर अपना हृदय-कुसुम रखा था वहां से उठाकर किसी ने दूसरी जगह रख दिया था। वह पाप था।

माधव—उस पाप को तुम पुण्य बना लो राधा !

राधा—और अपने जीवन को नरक बना लूं। यह मुझसे न होगा। (तनकर माधव के सामने खड़ी होती है। अपने सिर से साड़ी खिसका देती है) मुझे देखो माधव अच्छी तरह से देखो। मैं बचपन की राधा नहीं हूँ। मेरी आँखों की चितवन में यौवन का आह्वान है। मैं अपनी ही वासना के वेग से टुकड़े-टुकड़े हो जाऊँगी। तुम अपनी इष्टदेवी को अन्धकार की ओर मत जाने दो।

माधव—मैं जानता हूँ, राधा तुम्हारे पास क्या है मन है, और भावुक हृदय है। इन विचारों की लपटों में तुम झुलसी जा रही हो। मेरी स्मृति यदि प्रकाश दे सके तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। तुम मेरी मिट्टी का मोह छोड़ दो। राधा! तुम आज आईं तो और मैं आज जा रहा हूँ। इस मौत की छाह पार कर जा रहा हूँ। जब तक तुम मुझे अप्राप्य थीं मैं अपने पशु को पराजित कर सकता था, लेकिन अब! मैं तुमसे भी दुर्बल हूँ। मैं चला जाऊँगा ताकि दुर्बल क्षणों में कहीं मुझे तुम्हारी मिट्टी का मोह न हो जाए। भगवान् तुम्हें बल दे राधा! विदा!

[माधव का प्रस्थान]

राधा—वह चला गया! अभी तक मैंने अपने-आपको सुहागिन समझा था। क्या अब विधवा समझना होगा? समाज ने मेरे साथ जो किया था क्या अब उसे स्वीकार करना होगा? (घड़े में पानी भरकर सिर पर रखती है) अब मेरे सिर पर बोझ बढ़ गया है। रास्ते में रपटन है। मुझे डर है कहीं गिर न पड़ूँ।

[प्रस्थान]

[दृश्य-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[राधा अपनी ससुराल के घर में अपने कमरे में आइने के आगे खड़ी है। अपने लम्बे-लम्बे बालों को कंघे से सुलझा रही है।]

राधा—(बालों को हाथ में लेकर) अपने सिर पर इतना अन्धकार लादे वैधव्य के सूनेपन में जीवन का मार्ग कैसे पार कर सकूँगी! जो हृदय मरा नहीं है उसे लोग धड़कने से मना क्यों करते हैं? लोग कहते हैं जीवन भर

राधा—माधव ! तुमने बचपन में मुझे पेड़ों पर चढ़कर तोड़-तोड़कर फल खिलाए हैं । अब जवान होने पर मुझे भूखों मारोगे ? लेकिन यह राधा भूखी नहीं रहना चाहती । जो इसे भूखी रखना चाहते हैं वे प्रकृति के विरुद्ध चलते हैं । पराजित होते हैं । रात्रि के अन्धकार में वे अपनी भूख मिटाते हैं । मैं दिन के प्रकाश में—

माधव—दिन के प्रकाश में समाज से विद्रोह करना चाहती हो । इतना बल तुममें हो सकता है, मुझमें तो नहीं है । मुझे तुम्हारा मोह बचपन से ही रहा है । मैं तुम्हारे अस्तित्व को अपने प्राणों में भरे हुए संसार में विक्षिप्त-सा घूम रहा हूँ । किसी कार्य में मेरा मन नहीं लग रहा । मैंने समझा था तुम दूर हो । स्मृति के आकाश में तुम्हारी मूर्ति को स्थापित करके उसके चरणों पर आँसुओं का अर्घ्य चढ़ाना ही मैं अपना धर्म समझता था । आज वह मूर्ति प्रकट होकर कह रही है तुम मुझे ले लो । मैं संसार की आँखों में पापी बनने से नहीं डरता, लेकिन मेरी इष्टदेवि, तुम क्यों अपने आसन से नीचे उतरती हो ? भारतीय नारी की ऋषियों ने जो कल्पना की है वह सांसारिक वासना से बहुत ऊँची है । तुम वहीं बैठो राधा !

राधा—तुम मेरा अपमान करते हो !

माधव—मैं अपमान नहीं करता राधा ! तुम स्वयं अपना अपमान कर रही हो । तुम अपने अन्दर छिपी शक्ति को नहीं पहचानती ।

राधा—मेरा जीवन मेरा अपना है । समाज उसका स्वामी नहीं है । मैंने बचपन से तुम्हारे चरणों पर अपना हृदय-कुसुम रखा था, वहाँ से उठाकर किसी ने दूसरी जगह रख दिया था । वह पाप था ।

माधव—उस पाप को तुम पुण्य बना लो राधा !

राधा—और अपने जीवन को नरक बना लूँ । यह मुझसे न होगा । (तनकर माधव के सामने खड़ी होती है, अपने सिर से साड़ी खिसका देती है) मुझे देखो माधव अपनी तरह से देखो । मैं बचपन की राधा नहीं हूँ । मेरी साँसों में धड़कन में भूकम्प का आह्वान है, मैं अपनी ही वासना के वेग से टुकड़े-टुकड़े हो जाऊँगी । तुम अपनी इष्टदेवी को अन्धकार की ओर मत जाने दो ।

माधव—मैं जानता हूँ राधा, तुम्हारे पास धन है, मन है, और भावुक हृदय है। इन चिताओं की लपटों में तुम झुलसी जा रही हो। मेरी स्मृति यदि प्रकाश दे सके तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। तुम मेरी मिट्टी का मोह छोड़ दो। राधा! तुम आज आई हो और मैं आज जा रहा हूँ। इस गाँव को छोड़ कर जा रहा हूँ। जब तक तुम मुझे अप्राप्य थी मैं अपने पथ को प्रकाशित कर सकता था लेकिन अब! मैं तुमसे भी दुर्बल हूँ। मैं चला जाऊँगा ताकि दुर्बल क्षणों में कहीं मुझे तुम्हारी मिट्टी का मोह न हो जाए। भगवान् तुम्हें बल दे राधा! विदा!

[माधव का प्रस्थान]

राधा—वह चला गया! अभी तक मैंने अपने-आपको सुहागिन समझा था। क्या अब विधवा समझना होगा? समाज ने मेरे सत्य को छिपा या गया अब उसे स्वीकार करना होगा? (घड़े में पानी भरकर सिर पर रखती है) अब मेरे सिर पर बोझ बढ़ गया है। रास्ते में रपटन है। मुझे डर है कहीं गिर न पड़ूँ।

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[राधा अपनी ससुराल के घर में अपने कमरे में शीशे के सामने खड़ी है। अपने लम्बे-लम्बे बालों को धीरे से सुलझा रही है।]

राधा—(बालों को हाथ में लेकर) अपने सिर पर इतना अन्धकार लादे वैधव्य के सूनेपन में जीवन का मार्ग कैसे पार कर सकूँगी! जो हृदय अभी मरा नहीं है उसे लोग धड़कने से मना क्यों करते हैं? लोग कहते हैं जीवन दर-

पट दौड़ा जा रहा है लेकिन मुझे तो एक क्षण भी पहाड़ जान पड़ता है। बा
घोर भयंकर लपटें हैं। उनके भीतर होकर इतना लम्बा रास्ता पार करना है
ऋषियों की आज्ञा है शरीर पर एक भी झुलस न आए, नहीं तो तुम्हारे लि
नरक में स्थान होगा।

[बाहर किसी मकान में नृत्य-गान छिड़ रहा है। बाजा स्पष्ट सुनाई
रहा है।]

प्राण क्यों प्यासे रहें ये
पी रहा संसार प्याले !

[गाने की आवाज राधा को चौंका देती है]

राधा—यह कौन मेरे ही हृदय का गीत गा रही है ! आज मेरा मन बहुत
बेचैन हो रहा है।

[कंधा वहीं भू नाद-थाल पर रखकर आलमारी के पास जाकर उसमें से
एक फोटो निकालती है और उसे देखती है। गीत आगे बढ़ रहा है।]

बह रही सरिता छलकती
भर रही मद लोप मारकर।
प्यास अपनी तू बुझाती
क्यों न उसके तीर जाकर ?
व्यर्थ मुँह क्यों फेरती,
सामने मधु-धार पाकर ?
पाप इसमें कौन सा तू
प्यास प्राणों की बुझा ले।
प्राण क्यों प्यासे रहें ये
पी रहा संसार प्याले।
गा रही कोयल किसी तरु-
की शिखा पर तान प्यारा।
चोंच अपनी भर रहा है
है सुधा की स्रोत धारा।

तू विहग क्या सोचती है ?
है जगत् उन्मत्त सारा।
तू स्वर्ग कैदिन बनी है
रात-दिन कम्पन छलाते।
प्राण क्यों प्यासे रहें ये
पी रहा सं० प्याले।
रात आई है सजाकर
फूल तारों के मनोहर।
पर्वतों के भी हृदय से
फूटते रस-राग-निर्झर।
तू किधर चली अकेली
मन का यह बोझ ढोकर ?
क्या मधुमा राह में
दो बूँद पंछी को पुरा दे।
प्राण क्यों प्यासे रहें ये
पी रहा संसार प्याले!

[गीत समाप्त हो जाता है। राधा फिर आइने के सामने खड़ी हो जाती है। एक बार हाथ की तस्वीर देखती है दूसरी बार आइने में अपनी छवि।]

राधा—(तस्वीर को देखती हुई) एक दिन मैंने तुमसे कहा था 'प्राण क्यों प्यासे रहें ये पी रहा संसार प्याले।' किन्तु तुम निष्ठुर हो! तुम चले गए! मेरे जीवन में एक और अतृप्ति की आग बरसाकर। जिस ऊँचे आकाश में बैठकर तुम अपनी इष्ट-देवी की आराधना करते हो वहाँ मेरा हाड़-मांस का शरीर नहीं जा सकता। मैं पाप की ज्वाला से अपने ओंठ जलाऊँगी। (फिर आइने में देखती है। वहाँ उसे एक पुरुष की आकृति नजर आती है। वह चौंक पड़ती है। उसके हाथ से तस्वीर छूट जाती है। फिरकर देखती है। क्रोध से आँखें लाल करती है किन्तु पीछे खड़ा हुआ उसका देवर कमल केवल मुस्करा देता है। वह आँखें नीची कर लेती है।)

कमल—भाभी !

राधा—देवर !

कमल—यह बड़ा जुल्म है !

राधा—किस पर ?

कमल—तुम पर।

राधा—किसका ?

कमल—विधाता का !

राधा—राधा पर विधाता का जो जुल्म है उसकी कमल को क्यों चिन्ता है ?

कमल—यह मैं भी सोचता हूँ कि ऐसा क्यों है ? जो ज्वाला है वह पतंगों को आमन्त्रित करती ही है। ज्वाला पतंगों से पूछती है वे क्यों आते हैं ? जिन दीप-शिखाओं पर आवरण होते हैं उन आवरणों के चारों तरफ वे चक्कर लगाते हैं।

राधा—लेकिन क्या मनुष्य भी ऐसा ही करे ?

कमल—मैं ऐसा नहीं कहता कि मनुष्य भी ऐसा ही करे। लेकिन मनुष्य भी जानवर है वह अपनी वासना को छिपाना चाहता है और जानवर नंगा है। वास्तव में देखा जाए तो प्राणी-मात्र का स्वभाव एक है। प्रत्येक ऋतु अपने उपहार और अपनी आवश्यकताएँ लेकर आती है और मनुष्य के जीवन की भी ऋतुएँ होती हैं। उन ऋतुओं के उपहार और आवश्यकताएँ होती हैं। उन उपहारों को ग्रहण करना और आवश्यकताओं को पूरा करना मानव-हृदय का स्वाभाविक धर्म है।

राधा—तुम मुझसे क्या कहने के लिए रात के समय आए हो ?

कमल—तुम्हारी सिन्दूर का डिबिया कहाँ है ?

राधा—वह तो वर्ष से अलमारी में बन्द पड़ी है।

[कमल डिबिया उठा लाता है]

कमल—बुरा न मानो मैं तुम्हारे साथ खेल करता हूँ। (मस्तक में सिन्दूर भर देता है) अब जरा आइने में देखो। तुम्हारा हाहाकार अब हँस पड़ा न !

[राधा आइने में देखती है]

राधा—और मेरा वैधव्य तो पड़ा न ! रहने दो देवर, जो लकीर विधाता ने पोंछ दी उसे दुबारा धरने से लाभ ही क्या ! जब सवेरे आकाश लाल होगा तब संसार लाल आँखें करेगा।

कमल—(आइने के सामने राधा को बगल में खड़ा हो जाता है) क्या हम पास-पास खड़े हुए बुरे लगते हैं ?

राधा—तुम इतने नीच हो देवर ! तुम्हारे भाई मरकर भी मुझ में जीवित हैं।

कमल—तुममें जीवित हैं यह तुम सच कहती हो भाभी ? तुमने किस दिन अपने हृदय में उन्हें रखा ? यदि रखतीं तो शायद वे मौत के मुँह में से भी लौट आते। (नीचे से तस्वीर उठाता है) तुम एक क्षण भी उनको अपने हृदय में न रख सकीं। यह तस्वीर जो तुमने एकांत की साक्षिन बना रखी है सो क्या भैया की स्मृति-पूजा के लिए ? तुम अपने हृदय के अँधेरे में जिस पाप को छिपाए बैठी हो क्या मैं उससे अधिक काला हूँ।

राधा—तुम काले नहीं हो देवर ! मैं देवी भी नहीं हूँ कमल ! संसार में विरला ही पुरुष देवता होगा विरली ही नारी देवी होगी ! लेकिन प्रत्येक पुरुष को भ्रमर बनना आवश्यक नहीं और प्रत्येक नारी को वेश्या होना आवश्यक नहीं। मैं जानती हूँ मेरे लिए मेरा रूप और यौवन अभिशाप है। मेरा भावना विह्वल हृदय मुझे न जाने कहाँ-कहाँ उड़ा ले जाता है ! फिर भी आँधी-तूफान के भीतर मैं नारीत्व की दीप-शिखा को बुझने न दूँगी।

कमल—मैं तो समाज की निर्मम रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता हूँ।

राधा—मैं तुम्हें इसमें सहायता दूँगी देवर ! न जाने कितनी गरीब विधवाएँ वैधव्य की ज्वाला में जल रही हैं। सम्भवतः वहाँ तुम मुझ-जैसा रूप न पाओ, लेकिन नारी का रूप ही तो सब-कुछ नहीं है। फिर किसी रूप के लोभ से समाज से विद्रोह करना सात्विक नहीं होगा। बोलो देवर है तुममें साहस ?

कमल—मैं सोचूँगा !

[सहसा राधा की सास दुर्गा का प्रवेश कमल और राधा

फिर क्यों बोझ रहा बेकार, मुसाफिर।
जीवन का मत बोझ उतार।
मुसाफिर, जीवन का मत बोझ उतार।

जीवन तो विधि का दीपक है।
यह जलता रहता जबतक है।
कौन बुझा पाता तबतक है।

इसमें विधि का स्नेह अपार, मुसाफिर।
जीवन का मत बोझ उतार।
मुसाफिर, जीवन का मत बोझ उतार।

राधा—इस गीत ने मेरे प्राणों को हिला दिया है। मानों यह मेरी अन्तरात्मा की पुकार है। तो क्या मुझे मरने का भी अधिकार नहीं है? जब हमारे कपड़े मैले हो जाते हैं हम दूसरे पहन लेते हैं मैले उतार देते हैं।

[संन्यासी के वेश में माधव का प्रवेश]

माधव—देवि हमें नये होने का अधिकार तो नहीं है। हमारे दूसरे कपड़ों की अलमारी की चाभी हमारे पास नहीं है। तुम अर्धरात्रि के सूनेपन में गंगा के घाट पर क्या करने आई हो?

राधा—संन्यासी तुम मेरे माधव तो नहीं हो?

माधव—मैं माधव था तुम्हारा भी था किन्तु तुम्हारा न रहकर मैंने तुम्हें पा लिया है, राधा।

राधा—कब? आज!

माधव—आज नहीं आज से बहुत पहले जब भगवान् ने मुझे संसार के प्रत्येक प्राणी में तुम्हें देखने की आँखें दी। यह तो बताओ तुम यहाँ कैसे आई?

राधा—तुम्हारे सामने मेरा पाप या पुण्य कुछ भी छिपा नहीं रहना चाहता। आवरण-हीन होकर तुम्हारे सामने आने में मुझे शान्ति मिलती है।

माधव—हमें सारे संसार के सामने आवरण-हीन होकर रहना चाहिए। तभी हमें सच्ची शान्ति मिलेगी। हाँ कहो क्या कहती थी?

राधा—मैं तुम्हें प्यार करती हूँ यह बात मेरे देवर कमलबाबू जान गए और एक रात जब मैं आईने के सामने खड़ी होकर अपना रूप और तुम्हारी तस्वीर देख रही थी वे आ गए और मेरे साथ आ खड़े हुए। बोले 'क्या हम दोनों एक साथ अच्छे नहीं लगते। फिर उन्होंने मेरी माँग में सिंदूर भरकर कहा 'क्या तुम्हारी माँग में सिंदूर अच्छा नहीं लगता ?

माधव—तुमने चुपचाप सिंदूर भरवा लिया !

राधा—हाँ भरवा लिया। मैं विधवा हुई कब थी ? जब तक तुम हो मैं अपने-आपको विधवा क्यों समझूँ ?

माधव—फिर क्या हुआ ?

राधा—इतने ही में सास कालिका आ गई और मुझे कलंकिनी कहकर घर से निकल जाने का हुक्म सुनाया। कमलबाबू ऐसे भागे कि एक मास तक लौटे ही नहीं। मेरी प्रतिहिंसा ने मनुष्य को नष्ट करना चाहा पर विधाता ने बचा लिया। सास ने मेरी आत्मा को शान्ति पाने के लिए काशी भेज दिया। किन्तु बाबा विश्वनाथ के मन्दिर में भी मुझे शान्ति नहीं मिली। लोग मुझे पापिन समझते हैं मेरी ओर आँखें उठाते हैं। मुझे सुलभ वस्तु समझकर हाथ भी बढ़ाते हैं। इसलिए आत्म-वेदना ने कहा 'गंगा की गोद में विश्राम करो।

माधव—राधा ! भगवान् के मन्दिर में शान्ति अवश्य मिलती है। तुमने अभी तक उसका मन्दिर देखा नहीं उसकी मूर्ति को पहचाना नहीं।

राधा—तुम दिखा सकते हो !

माधव—दिखाऊँगा राधा ! तुम्हीं ने तो अनजान में मुझे भगवान् का मन्दिर दिखाया है। यह सम्पूर्ण विश्व भगवान् का मन्दिर है। प्रत्येक प्राणी भगवान् की मूर्ति है। उनकी सेवा करने में ही सच्ची शान्ति मिलती है राधा ! मैं अब से सेवा-मन्दिर का साधक बना हूँ मेरे मोहेंद्रजल के कपड़े छिन्न-भिन्न हो गए हैं मेरी सीमाएँ बढ़ गई हैं। मानों मैं महाप्राण में मिल गया हूँ।

राधा—माधव मुझे भी अपने चरणों में स्थान दोगे ?

माधव—अपने चरणों में ! मैं तुमसे दूर था ही कब ! जिस तरह मैंने तुम्हें खोया तुम मुझे खोजती। वासना के बादलों के पार यदि तुम झाँकती तो

द के प्रारम्भ होने से लगभग २८ वर्ष पूर्व का काल। कम्बाल-गढ़ का एक ग्राम। विजया नदी-तट की एक शिला पर बैठी हुई गा रही है। समय रात का प्रारम्भ। विजया की वय १६-१७ वर्ष के लगभग है। उज्ज्वल गौर वर्ण। शरीर सुगठित लम्बा, अत्यन्त आकर्षक स्वरूप। आँखों में आकर्षण, मादकता के साथ तेज। वेश सुरुचिपूर्ण होते हुए भी स्वभाव के अल्हड़पन का व्यक्त करने वाला। सिर से उत्तरीय का वस्त्र खिसककर भूमि पर गिर गया है। उत्तरीय के अतिरिक्त एक घुंघरू वस्त्र और कमर के आस-पास आवेष्टित है। गले में पुष्प-हार है। लम्बे बाल वायु में लहरा रहे हैं।]

विजया—(गान)

ओ निष्ठुर सजना, कहाँ है
हाय कितनी दूर ?
जब गगन में झूलती
वह शशि किरण मुझको सुलाती।
जब बहकती चाह, तब
कुछ भी नहीं है हाथ आता ॥
धूल में मिलते मचलते
स्वप्न होकर चूर।
ओ निष्ठुर सजना कहाँ है
हाय, कितनी दूर ?
ओ सजन जब गगन-तारा
लोचनों में है समाया।
वह गगन का चाँद होकर
दूर से ही मुसकराया ॥

इसलिए चमका नहीं है
आँसुओं का पूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर?

पालने में प्यास के, हर
दम जिसे झूला झुलाया।
क्यों न उसने प्रेम मेरा
आज तक पहचान पाया॥

दिल उसी को प्यार
करने के लिए मजबूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय कितनी दूर?

[विजया गीत गाने में तल्लीन है। श्रीपाल आकर उसको नजर बचाकर उसके पास खड़ा रहता है। श्रीपाल एक बलिष्ठ और सुन्दर नवयुवक है। उसका वेश योद्धा का है। कमर में तलवार, हाथ में धनुष कन्धे पर पीठ की ओर तरकस। वय लगभग २१ वर्ष।]

श्रीपाल—विजया!

विजया—(गाना बन्द करके खड़ी होकर, उत्तरीय का पल्ला सिर पर डालती हुई) तुम बड़े अशिष्ट हो श्रीपाल!

श्रीपाल—ऐसे कोमल कण्ठ से ऐसे कठोर शब्द शोभा नहीं देते विजया!

विजया—तुम अपनी सीमा के बाहर जाते हो।

श्रीपाल—मैंने तुम्हारा अपमान किया है क्या विजया?

विजया—अपमान तो नहीं किया।

श्रीपाल—तब?

विजया—यहाँ एकान्त में मुझे अस्त-व्यस्त वेष में देर तक चुपचाप खड़े देखते रहना!

श्रीपाल—मैं तुम्हें जीवन भर देखना चाहता हूँ विजया!

विजया—(किंचित् लज्जा-मिश्रित क्रोध से) किस अधिकार से ?

श्रीपाल—जिस अधिकार से चाँद तुम्हें इस समय देख रहा है।

विजया—दूर रहकर आकाश से ?

श्रीपाल—हाँ तुम मेरे जीवन की प्रेरणा हो स्फूर्ति हो। तुम्हारी स्मृति मेरे रक्त को गति देती है। तुम्हें पाने की इच्छा करना मेरे जीवन का जीवन है—लेकिन तुम्हें पा लेना मेरे जीवन की मृत्यु है।

विजया—उधर देखते हो श्रीपाल ! कहीं वर्षा हुई है इसलिए नाले में जल बढ़ गया है। धारा के दोनों ओर चट्टानें हैं। जल को फैलने को स्थान नहीं मिल रहा। वह कितना शोर कर रहा है और कितने वेग से आगे बढ़ रहा है।

श्रीपाल—हमारे-तुम्हारे बीच इससे भी ऊँची और बड़ी चट्टानें हैं विजया !

विजया—कौन-सी चट्टानें ?

श्रीपाल—एक है तुम्हारा भाई जयदेव ! उसे अपने कुल का अभिमान है। मैं एक साधारण किसान का पुत्र हूँ और तुम भारत की सुप्रसिद्ध मानव जाति के भद्र-कुल की कन्या हो। पृथ्वी पर पैर रखकर चलने वाला प्राणी आकाश की तारिका की ओर कैसे हाथ बढ़ा सकता है ?

विजया—यदि वह तारिका आकाश से उतरकर तुम्हारी गोद में आ गिरे तो ?

श्रीपाल—मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा।

विजया—क्यों ?

श्रीपाल—मैं कृपा या दान नहीं चाहता।

विजया—तो चोरी करना चाहते हो डाका डालना चाहते हो। डाका डालना तो कायरता नहीं है ?

श्रीपाल—मैं इतना छोटा नहीं बनना चाहता कि मुझे अपनी ही चीज की चोरी करनी पड़े।

विजया—तब तुम क्या चाहते हो ?

श्रीपाल—बदला !

विजया—किससे ?

श्रीपाल—जयदेव से !

विजया—अच्छा तो इसीलिए तुमने हल छोड़कर शस्त्र पकड़े हैं।

श्रीपाल—जो हल पकड़ना जानता है वह शस्त्र पकड़ना भी जान सकता है।

विजया—किन्तु उसका उचित प्रयोग करना भी जान पाए तब न ?

श्रीपाल—मानवता का तिरस्कार करने वालों—सृष्टि के चिरन्तन भाव प्रेम का अपमान करने वालों के विरुद्ध मेरा शस्त्र होगा। जाता हूँ विजया ! तुम मेरे जीवन की स्फूर्ति हो—मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

[श्रीपाल प्रणाम करता है]

विजया—तुम जा तो रहे हो श्रीपाल किन्तु मुझे भय है तुम मार्ग भूल जाओगे।

श्रीपाल—तुम्हारा प्रेम मेरा मार्ग-दर्शक है।

[श्रीपाल का प्रस्थान]

विजया—(श्रीपाल की ओर देखती हुई) विक्षिप्त युवक ! आकांक्षा के आवेग को न सँभाल सकने के कारण न जाने किस विस्फोट की ओर जा रहा है ?

[विजया कुछ क्षण स्तब्ध-सी खड़ी उसी ओर देखती रहती है, जिस ओर श्रीपाल गया है। फिर एक लम्बी साँस लेकर शिला पर बैठ जाती है। कुछ क्षण विचार-मग्न रहकर वही गीत गाने लगती है। गीत आधा ही हो पाता है कि उसका भाई जयदेव प्रवेश करता है। जयदेव भी गौरवर्ण बलिष्ठ शरीर, बड़ी आँखों और रौबदार चेहरे वाला नवयुवक है। ललित वेष-भूषा कपड़ों एवं चाल-ढाल से उसके धन और सुसम्पन्न होने का आभास मिलता है।]

जयदेव—(विजया के कन्धे पर हाथ रखकर) विजया !

विजया—(चौंककर) ओह भैया !

जयदेव—चौंक क्यों उठी बहन ?

विजया—मैं डर गई थी।

जयदेव—मानव कन्या होकर डर का नाम लेती है, विजया !

विजया—मैं शस्त्र की धार से नहीं डरती, सिंह के तीक्ष्ण नखों से नहीं

डरती। मैं मनुष्य के शारीरिक बल से नहीं डरती। हिंसा से मैं लड़ सकती हूँ।

जयदेव—फिर डरती किससे हो जो लड़ किससे नहीं सकती?

विजया—मनुष्य के प्रेम से। (स्नेह पयपय विनम्र स्वर में) भैया!

जयदेव—(विजया के मस्तक पर हाथ रखते हुए) क्या बात है विजया?

विजया—मैं अपने हृदय पर विजय नहीं पा सकी हूँ। प्राणों में आठों पहर ज्वाला जलती है। तुम्हारी वंश-गौरव की दीवारें मुझे बन्दी बनाकर नहीं रख सकेंगी।

जयदेव—विजया!

विजया—हाँ भैया मैं विद्रोह करूँगी।

जयदेव—किससे?

विजया—तुम्हारे अभिमान से। मेरे भाई मालव-कुल भूषण जयदेव से।

जयदेव—तुम मुझसे युद्ध करोगी?

विजया—हाँ।

जयदेव—जीत सकोगी?

विजया—अवश्य!

जयदेव—कैसे?

विजया—अपनी बलि देकर। इस शरीर को—जिसमें ऐसा मालव रक्त प्रवाहित है जो मुझे प्रेम के स्वाधीन-प्रदेश में जाने से रोकता है—जमना के उद्दाम प्रवाह में प्रवाहित करके।

जयदेव—बहन तुम्हें हो क्या गया है!

विजया—तुम तो सब जानते हो भैया!

जयदेव—यहाँ श्रीपाल आया था?

विजया—हाँ!

जयदेव—तभी तुम इतनी चंचल हो उठी हो। विजया तुम्हें एक काम करना पड़ेगा।

विजया—क्या?

जयदेव—मालव भूमि को श्रीपाल का मस्तक चाहिए।

विजया—मालव भूमि को या तुम्हें ?

जयदेव—मुझे नहीं मालव भूमि को।

विजया—लेकिन उसे तो तुमसे शत्रुता है मालव भूमि से नहीं।

जयदेव—वह मेरे अपराध का दण्ड मालव भूमि को देना चाहता है।

विजया—मालव भूमि को या मालव-गण को ?

जयदेव—जब विदेशी शासन हमारे देश पर होगा तब क्या कोई जाति पराधीनता से बच सकेगी ?

विजया—विदेशी शासन मालव-भूमि पर।

जयदेव—हाँ जिन शकों ने सिंध और सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया है, उन्हें श्रीपाल ने मालवा पर आक्रमण करने को आमंत्रित किया है।

विजया—तुम लोगों का वंशाभिमान अपने ही देश में देश के शत्रु उत्पन्न कर रहा है। तुमने श्रीपाल का अपमान किया है और निराशा उसे शत्रु के पास खींच ले गई है।

जयदेव—जिस जाति ने सदा भारत का अंग-रक्षक बनकर आततायियों को देश में आने से रोका है जिसने सिकन्दर महान् की विश्वविजयी यूनानी सेना को हजारों प्राणों की बाजी लगाकर वापस लौट जाने को बाध्य किया उसे क्यों न अपने ऊपर गर्व हो ? उसे अपनी सैनिकता एवं बल-विक्रम पर अभिमान क्यों न हो ?

विजया—किन्तु जो जाति सैनिक नहीं है, क्या वह मनुष्य ही नहीं है ? कार्य-विभाजन नीच-ऊँच की दीवारें क्यों खड़ी करे ?

जयदेव—यह इन बातों पर विचार करने का समय नहीं है।

विजया—देश के पास इन बातों पर विचार करने का समय नहीं है तो एक के बाद दूसरा श्रीपाल इस देश में जन्म लेगा। तुम एक श्रीपाल का मस्तक लेकर देश की रक्षा नहीं कर सकोगे।

जयदेव—तू श्रीपाल और देश दो में से किसे चुनेगी ?

विजया—तुम देश और मानवता दोनों में से किसे चुनोगे ?

जयदेव—पराधीनता मानवता का सबसे बड़ा पतन है।

विजया—और प्रेम ?

जयदेव—जो प्रेम देश की हत्या करे उसका गला घोंटना ही होगा। श्रीपाल मालवा के मार्गों नदी-पर्वतों से परिचित है। शक-सेना संख्या में हमसे अधिक है। उनके पास अपार अश्वारोही-हस्ती-बल है अस्त्र-शस्त्र भी अपरिमित हैं। यदि उन्हें इस देश की भूमि से परिचित व्यक्ति मिल जाए तो परिणाम हमारे लिए भयंकर है। सोचो विजया उस समय हमारे देश का क्या होगा ?

विजया—तुम मेरी हत्या कर दो भैया !

जयदेव—विजया कर्तव्य और प्रेम के द्वंद्व में जो कर्तव्य को विजयी बना सकता है वही सच्चा मानव है। तुम देश के महत्त्व को समझो। तुम्हारे पिता तुम्हारे दादा और तुम्हारी न जाने कितनी पीढ़ियों ने इस भूमि की रक्षा में अपना रक्त सींचा है बहन। कितनी बहनों ने अपने भाइयों को रणभूमि में विसर्जित किया है—कितनी सुन्दरियों ने यौवन के प्रभात-काल में पतियों को स्वर्ग का मार्ग दिखाया है। यह एक विजया या एक श्रीपाल का प्रश्न नहीं है—यह देश का प्रश्न है। बोल बहन तू क्या कहती है ?

[विजया चुप रहती है]

जयदेव—तू सोचना चाहती है, तो सोच ! तू मालव-कन्या है विजया ! मैं अभी आता हूँ।

[जयदेव का प्रस्थान। विजया हतबुद्धि-सी खड़ी रहती है। फिर वह गीत गुनगुनाने लगती है। श्रीपाल प्रवेश करता है।]

श्रीपाल—विजया !

विजया—अच्छा हुआ तुम आ गए, नहीं तो मुझे तुम्हारे पास जाना पड़ता।

श्रीपाल—हाँ मैं आ गया हूँ। मैंने अपना निश्चय बदल दिया है। मैं तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।

विजया—लेकिन श्रीपाल मैंने भी अपना निश्चय बदल दिया है।

श्रीपाल—क्या ?

विजया—मुझे तुम्हारा मोह छोड़ना होगा।

श्रीपाल—पहले तुम मेरे पास क्यों आना चाहती थीं।

विजया—वह केवल बचपन था। बचपन जवानी से ज्यादा प्यारा है। आज मैं बड़ा बचपन करना चाहती हूँ—तुम इसे पागलपन कहोगे—लेकिन आज मैं तुम्हारे साथ जीवन का अन्तिम खेल खेलूँगी। बचपन में हम साथ खेले हैं—बोलो आज भी खेलोगे।

श्रीपाल—अवश्य विजया!

विजया—तो लाओ तुम्हारे बलिष्ठ हाथों को मैं अपने उत्तरीय से बाँध दूँ।

श्रीपाल—क्यों ?

विजया—यह भी एक खेल है। आँख-मिचौनी में आँखें बन्द करते हैं—लेकिन यह नए प्रकार का खेल है इसमें हाथ बाँधने पड़ते हैं। लाओ हाथ बढ़ाओ।

[श्रीपाल हाथ बढ़ाता है विजया उसके हाथ अपने उत्तरीय से खूब कस कर बाँध देती है। दूसरी ओर से जयदेव का प्रवेश।]

श्रीपाल—(जयदेव को बिना देखे ही) अब आगे।

विजया—आगे का खेल मेरे भैया खेलेंगे।

[विजया जयदेव की ओर उँगली उठाती है]

श्रीपाल—विजया तुम ऐसा छल कर सकती हो इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी।

विजया—मुझे इस बात का अभिमान है कि मैंने अपने प्रियतम को देश-द्रोह से बचा लिया।

जयदेव—(श्रीपाल से) तुम मेरे अपराध का दण्ड मातृभूमि को देना चाहते हो।

विजया—और देश ने तुम्हारे अपराध का दण्ड मुझे देने का निश्चय किया है।

श्रीपाल—जयदेव तुम वीर हो। साहस और पुरुषार्थ के लिए प्रसिद्ध मालव जाति के गौरव हो तुम छल-द्वारा मुझे बन्धन में बाँधना पसन्द करते हो ?

जयदेव—इस समय देश के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न है श्रीपाल! उदारता के लिए अवकाश नहीं है।

विजया—(श्रीपाल से) प्रियतम! मैं अपने अपराध के लिए क्षमा चाहती हूँ। (गले से पुष्प-हार उतारकर श्रीपाल को पहनाकर) यह मेरे प्रेम का अन्तिम प्रमाण है। आज हमारा स्वयम्बर है। आज मानव-जाति की परम्परा के प्रतिकूल एक दीन कृषक-कुमार को मैं वरमाला पहनाती हूँ। मैं तुम्हारी हूँ—तुम्हारी रहूँगी—तुम्हारे साथ रहूँगी।

श्रीपाल—मेरे हाथ बँधे हुए हैं, विजया! मैं तुम्हें कुछ प्रतिदान नहीं दे सकता।

विजया—प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। तुम्हारे चरणों की रज मुझे मिल सकती है, मेरे लिए यही अमूल्य निधि है।

[विजया श्रीपाल के चरण छूती है]

[पटाक्षेप]

घर या होटल ?

पात्र-सूची

सुरेन्द्र

एक धनी युवक।

कमला

सुरेन्द्र की पत्नी।

कुसुम

सुरेन्द्र की प्रेयसी।

अविनाश

कमला का प्रेमी।

विजया—(श्रीपाल से) प्रियतम! मैं अपने अपराध के लिए क्षमा चाहती हूँ। (गले से पुष्प-हार उतारकर श्रीपाल को पहनाकर) यह मेरे प्रेम का अन्तिम प्रमाण है। आज हमारा स्वयम्बर है। आज मालव-जाति की परम्परा के प्रतिकूल एक दीन कृषक-कुमार को मैं वरमाला पहनाती हूँ। मैं तुम्हारी हूँ—तुम्हारी रहूँगी—तुम्हारे साथ रहूँगी।

श्रीपाल—मेरे हाथ बँधे हुए हैं, विजया! मैं तुम्हें कुछ प्रतिदान नहीं दे सकता।

विजया—प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। तुम्हारे चरणों की रज मुझे मिल सकती है, मेरे लिए यही अमूल्य निधि है।

[विजया श्रीपाल के चरण छूती है]

[पटाक्षेप]

घर या होटल ?

पात्र-सूची

सुरेन्द्र
एक धनी युवक।

कमला
सुरेन्द्र की पत्नी।

कुसुम
सुरेन्द्र की प्रेयसी।

अविनाश
कमला का प्रेमी।

पहला दृश्य

[समय—रात के १२ बजे सुरेन्द्र अपने कमरे के द्वार बन्द किए कुर्सी पर अकेला बैठा है। उसके कमरे में एक कोने में एक पलंग बिछा है बीच में एक टेबिल के चारों ओर कुछ कुर्सियाँ रखी हैं। टेबिल पर कुछ पुस्तकें अस्त-व्यस्त पड़ी हैं। एक आलमारी है जिसका दरवाजा खुला हुआ है जिसमें अनेक चीजों में एक शराब की बोतल, एक सोडे की बोतल और शीशे का गिलास नजर आता है। सुरेन्द्र उठकर आलमारी खोलकर शराब और सोडे की बोतल तथा शीशे का गिलास लाकर टेबिल पर रखता है तथा डालकर पीता है। फिर एक कोने में पड़े हुए हारमोनियम को उठा लाता है और गाता है।]

सुरेन्द्र—

पी ले पी ले
छक-छककर मधु पी ले !
उपवन में कलियाँ मुसकातीं,
अलियों को हैं पास बुलातीं
मद से भरे पात्र दिखलातीं
लाल गुलाबी पीले नीले।
पी ले पी ले,
छक-छककर मधु पी ले !
बाग में डाल-डाल कुसुम खिलाये,
पी तू नित्य नए मधु-प्याले,
यौवन का आनन्द उठा ले
जी ले मतवाला बन जी ले !
पी ले, पी ले
छक-छककर मधु पी ले !

[बाहर से दरवाजा खटखटाने की आवाज आती है। सुरेन्द्र उठता है और दरवाजा खोलता है। दरवाजे के खुलते ही एक १६ १७ वर्ष की सुन्दर लड़की कमरे में प्रवेश करती है।]

सुरेन्द्र—तुम कुमुद !

[हाथ पकड़कर अपने पास एक कुर्सी पर बैठाता है]

सुरेन्द्र—(प्याला कुमुद की ओर बढ़ाकर) लो तुम भी पियो।

कुमुद—क्या मैंने आज तक पी है जो आज पिऊँगी ! मैं तो तुमसे भी कहती हूँ—यह मुँह लगाने योग्य नहीं है।

सुरेन्द्र—लेकिन जो मुँह लगाने योग्य हैं वे तो कभी हमसे आँखें भी नहीं मिलाते—फिर हम क्या करें। तुम्हारे इस सुरेन्द्र को इसीलिए यह लाल परी प्यारी है। प्राणों में पहुँचकर जिस समय यह नाचती है—इन्द्र की अप्सराएँ मेरी आँखों के आगे सौ-सौ आमंत्रण देती हुई नजर आती हैं !

कुमुद—सुरेन्द्र तुम्हें अपने जीवन का मोल समझना चाहिए। इसे शराब के समुद्र में गर्क कर देने का तुम्हें अधिकार नहीं है।

सुरेन्द्र—ओह, तुम मुझे शिक्षा देने आई हो देवि ! इस समय रात्रि के बारह बजे हैं। इस समय मनुष्य की मनुष्यता सो रही है—पशुता जाग रही है। शिक्षा देना हो तो ब्राह्म मुहूर्त में आना।

कुमुद—मैं आज तुमसे बहुत गम्भीर चर्चा करने आई हूँ।

सुरेन्द्र—गम्भीर चर्चा ! मुझसे ! कैसी दुराशा है ! इसके लिए मैं पैदा ही नहीं हुआ कुमुद ! दिन के प्रकाश में—मनुष्यों की चहल-पहल देखकर कुछ दिल बहला भी लेता हूँ—लेकिन रात्रि को जब यह खेल-तमाशा बन्द हो जाता है—मुझे प्रकृति की निस्तब्धता व्याकुल करने लगती है। इसीलिए मुझे इस लाल पानी की और तुम्हारे-जैसे एक साथी की ज़रूरत है कुमुद !

[अपनी अँगुलियों से कुमुद की ठोड़ी ज़रा ऊँची करता है]

कुमुद—लेकिन सुरेन्द्र संसार से भागने में आदमी सफल नहीं हो सकता। यह स्वाभाविक जीवन नहीं है।

सुरेन्द्र—स्वाभाविक जीवन तो है मृत्यु, कुमुद ! मेरी समझ में नहीं आता

कि यह कर्म का चक्र क्यों चलाया गया है। ढेर-के-ढेर मनुष्य पैदा कर दिए गए हैं—और उनके मस्तिष्कों को ऐसे शैतान के कारखाने बना डाला है कि वे इस सृष्टि के भीतर अपनी सृष्टियाँ करते रहते हैं। विधाता ने जो कुछ उन्हें दिया है—वे उससे सन्तुष्ट नहीं हैं।

कुसुम—तुम शराब पीकर दार्शनिक बन जाते हो सुरेन्द्र !

सुरेन्द्र—हाँ कुसुम ऐसा जान पड़ता है—जैसे मेरी अपनी शक्ति नष्ट हो गई है। इस संसार में एक कदम चलने के लिए भी मुझे सहारा चाहिए। मुझसे अपने जीवन का बोझ नहीं सँभाला जाता।

कुसुम—ऐसा क्यों है ? तुम्हारे पास वैभव है—तुम्हारे पास ज्ञान है। कर्म करने की शक्ति है। तुम तो दूसरों का भी बोझ उठा सकते हो—ऐसा क्यों कहते हो कि तुम्हें अपना ही बोझ भारी पड़ रहा है।

सुरेन्द्र—मैं अपनी अभिलाषाओं का स्वामी नहीं हूँ। हमारे परिवार की प्रतिष्ठा और मर्यादाएँ जैसे मुझे शेष संसार से काटकर अलग किए रहती हैं।

कुसुम—तुम अपना संसार स्वयं नहीं बना सकते क्या ? तुम पुरुष हो तुममें पुरातन के खण्डहर पर नूतन का महल बनाने की शक्ति होनी चाहिए।

सुरेन्द्र—नहीं रानी ! मैं जग की कीच में धँसा हूँ। मेरे सभी सुख के सारे साधन बिना मन किए आते हैं। मुझमें संघर्ष करने का साहस नहीं है।

कुसुम—किन्तु, सुरेन्द्र मुझे तुम पर अपने जीवन का बोझ डालना आवश्यक हो गया है।

सुरेन्द्र—ऐसा बोझ तो मैं बहुत उठा सकता हूँ।

[हँसता है]

कुसुम—हँसो मत सुरेन्द्र ! मैं इसी घर में तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ।

सुरेन्द्र—क्यों ? तुम्हारा मकान छोटा है ? छोटा हो तो मैं दूसरा दिलवा सकता हूँ। उसका किराया देने की शक्ति मुझमें है।

कुसुम—मैं बड़े-से-बड़े मकान में भी माँ-बाप के साथ नहीं रह सकती।

सुरेन्द्र—क्यों ?

कुसुम—इसलिए कि स्त्री को विवाह के पहले माँ बनने का अधिकार

नहीं है।

सुरेन्द्र—कौन कहता है

कुमुद—माँ-बाप कहते हैं।

सुरेन्द्र—उन्होंने पहले क्यों नहीं कहा ?

कुमुद—उन्हें धन की आवश्यकता थी।

सुरेन्द्र—अब ?

कुमुद—समाज का डर है।

सुरेन्द्र—तब फिर ?

कुमुद—मुझे इस घर में स्थान देना होगा।

सुरेन्द्र—लेकिन मैं यहाँ अध्ययन करने आया हूँ। घर बसाने नहीं। मुझे माँ-बाप से पूछना होगा।

कुमुद—पहले क्यों नहीं पूछा ?

सुरेन्द्र—तुम्हारे सौन्दर्य ने नहीं पूछने दिया।

[कुमुद उठकर जाने लगती है]

सुरेन्द्र—(हाथ पकड़कर) बैठो भी। तुम नाराज हो गई कुमुद! मुझे थोड़ा सोचने तो दो।

कुमुद—मैंने अपना निश्चय कर लिया है—तुम्हें कुछ भी सोचने की आवश्यकता नहीं।

सुरेन्द्र—क्या निश्चय किया ?

कुमुद—यही कि तुम मेरे हो! मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती।

सुरेन्द्र—लेकिन

कुमुद—डरो मत मैं तुम्हें तुम्हारे वंश की मर्यादा के नीचे नहीं उतारूँगी! मैं जाती हूँ।

सुरेन्द्र—मुझे छोड़कर ?

कुमुद—(दरवाजे के पास पहुँचकर) नहीं तुम्हें अपने साथ लेकर।

[दरवाजे के बाहर चली जाती है]

सुरेन्द्र—सुनो कुमुद ! सुनो कुमुद !

[कुमुद के पीछे दरवाजे के बाहर जाता है]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—सुरेन्द्र के बँगले के सामने का बगीचा। समय—रात्रि के ८ बजे। सुरेन्द्र एक घने पेड़ की छाया में चुपचाप बैठा है। सामने से माली आता है।]

माली—बाबू जी।

सुरेन्द्र—कहो भोला !

भोला—रात अधिक हो गयी है ! घर नहीं जाइएगा !

सुरेन्द्र—घर ! इतना बड़ा घर ! मेरे लिए बहुत बड़ा है भोला। पिछले दो वर्षों में मेरी सारी दुनिया बदल गई। माँ की प्यार भरी गोद और पिताजी का आशीर्वाद भरा हाथ सब-कुछ मुझसे छिन गया। भोला मुझे यह घर काटने को दौड़ता है !

भोला—मालिक ! माँ-बाप किसके साथ नहीं जाते ! लेकिन जो आता है वह जाता है। समय के मरहम से सबके घाव अच्छे हो जाते हैं ! मैं तो आपका पुराना नौकर हूँ—आपको सीख देना मुझे नहीं सुहाता—लेकिन मालिक आप जब (हाथों से बताते हुए) इतने से थे तब से मैं आपकी टहल कर रहा हूँ। इसलिए कुछ कहने की इच्छा हो ही जाती है।

सुरेन्द्र—कहो न क्या कहना चाहते हो ?

भोला—उधर देखिए, वह पौधा मुरझा गया है।

सुरेन्द्र—किसलिए ?

भोला—दो दिन से मैंने उसे पानी नहीं दिया इसलिए !

सुरेन्द्र—तो तुम्हें पानी देना चाहिए ?

भोला—वह तो मैं दूँगा ही लेकिन मालिक आपकी जमींदारी का पौधा भी देख-रेख माँगता है। पुरखाओं की यह कमाई

सुरेन्द्र—समाप्त हो जाए तो अच्छा है भोला।

भोला—क्यों मालिक ?

सुरेन्द्र—इसने मेरे हृदय को पानी नहीं देने दिया ? इसने मेरे हृदय के सुमन को सुखा दिया है। आज मेरे जीवन का पौधा मुरझा चला है, भोला ! मैं अपनी ही खबर नहीं रख सकता कारोबार को क्या देखूँ ! मेरे बगीचे का माली मुझे नहीं देखता।

[सुरेन्द्र की पत्नी कलावती का प्रवेश। उसके साथ एक युवक है]

सुरेन्द्र—कला !

कला—जी ! (साथ के युवक से) आप चलें। मैं आती हूँ। (युवक चला जाता है। कला सुरेन्द्र के पास आती है। माली वहाँ से हट जाता है।)

कला—कहिए क्या हुक्म है।

सुरेन्द्र—मैं पूछता था इस समय कहाँ जाना हो रहा है ?

कला—कुछ नहीं जरा रीजन्ट होटल तक जा रही हूँ।

सुरेन्द्र—क्यों ?

कला—ये अविनाश बाबू मेरे क्लास-फेलो हैं। आज कई वर्ष बाद इनसे मिलना हुआ है तो क्या दो घड़ी इनसे बात भी न करूँ ?

सुरेन्द्र—अच्छा कब तक आना होगा ?

कला—रात के बारह-साढ़े बारह भी बज सकते हैं—शायद इनके साथ दूसरे शो में सिनेमा चली जाऊँ।

सुरेन्द्र—लेकिन…

कला—लेकिन क्या ? एक युग से पुरुष घर के बाहर अकेला घूमता रहा है। नारी ने कभी नहीं पूछा—कहाँ जा रहे हो—कब आओगे—बाहर क्या काम है ? आपको मेरा विश्वास…

सुरेन्द्र—आज की नारी पग-पग पर विश्वास की बात क्यों कहने लगी है ?

कला ! नारी को रोकने का पुरुष को अधिकार नहीं है यही तो तुम कहती हो ! यही तो आज की शिक्षा ने तुम्हें सिखाया है ।

कला—तो नए युग का प्रकाश आपको बुरा लगता है । आपने बड़ी भूल की जो मुझ-जैसी स्वच्छन्द प्रकृति की स्त्री को अपने घर की चहारदीवारी में बन्द करने का यत्न किया ।

सुरेन्द्र—तुम जाओ कला ! मैंने कभी तुम्हें रोकने का प्रयत्न नहीं किया जिस व्यक्ति का अपने ऊपर ही अधिकार नहीं है—उसे दूसरे पर शासन करने का कैसे हो सकता है । इस भरे-पूरे संसार में केवल सूनापन मेरा है और इस संसार का केवल यह सुरेन्द्र तुम्हारा नहीं है—शेष सब-कुछ तुम्हारा है, तुम्हारे स्नेह का अधिकारी है ! तुम जाओ तुम्हें देर होती होगी !

कला—किन्तु,

सुरेन्द्र—किन्तु, कुछ नहीं ! तुम मेरे जीवन की सान्त्वना नहीं बन सकीं। मेरा जीवन आज अपनी स्वाभाविक धारा से कटकर सूखा जा रहा है तो मुझे कोई अधिकार नहीं कि तुम्हें भी अपने साथ सुखा डालूँ !

कला—इस युग में इतनी भावुकता ! इतनी शिक्षा प्राप्त करके भी आप हृदय के आवेगों पर शासन करना न सीख सके । बड़े आश्चर्य की बात है !

सुरेन्द्र—शिक्षा—हाँ—इसे हम शिक्षा ही कह सकते हैं—जो बुद्धि और मस्तिष्क की स्वतन्त्रता के नाम पर हमारी वासनाओं को प्रज्वलित कर रही है । आज का युग भावुकता का शत्रु है—उस भावुकता का जिसने स्नेह का एक सुनहरा संसार बनाया था जिसने आदर्श के प्रति श्रद्धा को जन्म दिया था ! इसी शिक्षा ने मुझे एक दिन विक्षिप्त कर दिया था । इसी शिक्षा ने तुम्हें विभिन्न कर दिया है—कला ! जाओ कला तुम आज से पूर्ण स्वतन्त्र हो ।

कला—यह आप नाराज होकर कह रहे हैं ?

सुरेन्द्र—नहीं दुखी होकर ! मैंने सोचा था—यह फूल जो डाल से टूट गया था—तुम्हारे स्नेह से सिंचकर कुछ घड़ियाँ और शान्ति की हँसी हँस लेगा । किन्तु तुम स्वयं ऐसे आकाश में उड़ रही हो—जहाँ कोई आधार नहीं है । मैं कैसे तुम्हें अपना आधार बना सकता हूँ ।

कला—किन्तु, किसी मनुष्य को आधार चाहिए ही क्यों ? उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। किसी से स्नेह पाने और किसी को स्नेह देने की लालसा उसे क्यों होनी चाहिए ?

सुरेन्द्र—तुम यही तो कहती हो कला—कि हमें गृहस्थी की जरूरत नहीं है—जहाँ परिवार का प्रत्येक प्राणी एक दूसरे से अविच्छेद्य है। स्नेह और ममता के सूत्र से एक है। तुम चाहती हो भारतीय गृहस्थी—होटल का रूप धारण करे—जहाँ प्रत्येक कमरे का अधिवासी दूसरे कमरे वाले से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति का कार्य हो जाता है—किन्तु करने वाला व्यापार समझकर करता है—उसमें स्नेह की स्निग्धता नहीं है—व्यापार की नीरसता है!

कला—यदि बुद्धि से देखा जाए तो मैं समझती हूँ—ऐसे जीवन में कोई हानि नहीं है!

सुरेन्द्र—ठीक है! तो तुम जाओ! देखो वह युवक तुम्हें लेने इधर ही आ रहा है। जाओ—इस घर रूपी होटल का दरवाजा तुम्हारे लिए सदा खुला हुआ है। यदि यह घर होता तो शायद इसके दरवाजे बन्द किए जा सकते।

[सुरेन्द्र चला जाता है और दूसरी ओर से अविनाश आता है]

अविनाश—तुमने तो बड़ी देर लगा दी कला! चलो न!

[हाथ पकड़ता है]

कला—(हाथ छुड़ाती है) नहीं मिस्टर अविनाश! मैं आज नहीं जा सकती। मुझे क्षमा करो।

अविनाश—क्यों—क्या पतिदेव की आज्ञा नहीं है ?

कला—नहीं यदि वे आज्ञा देना जानते तो शायद मैं उसका उल्लंघन करना भी सीख जाती।

अविनाश—फिर क्यों नहीं चलती ?

कला—प्रत्येक बात का उत्तर नहीं दिया जा सकता अविनाश! मैं समझती हूँ हमारा जीवन बहुत अस्वाभाविक रूप में बह रहा है—हमें उसे रोकना चाहिए।

सुरेन्द्र—तुम्हें अच्छा लगता है ?

कुमुद—क्यों नहीं यहाँ मनुष्यों की सेवा करने का अवसर मिलता है। ऐसी सेवा जिसमें वासना का आवेग नहीं है। जिसमें चिर-शान्ति है। नारी स्नेह और सेवा किए बिना जी नहीं सकती—इसीलिए जब तुमने मेरा भार स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तब मैंने मन की शान्ति के लिए यह रास्ता पकड़ा।

सुरेन्द्र—तुमने मुझे अवसर ही नहीं दिया कुमुद !

कुमुद—मैं तुम्हारे साथ कठोरता करना तो चाहती थी लेकिन जब मुझे ज्ञात हुआ कि तुम विवाहित हो मैंने तुम्हारे गृह-मन्दिर में अपनी भ्रष्ट प्रतिमा को स्थापित करना उचित नहीं समझा।

सुरेन्द्र—ओह ! तुमने मेरी प्रतीक्षा भी नहीं की। मैं तुम्हें अपने घर की रानी बनाता। मैं तुम्हें लेने तुम्हारे घर गया तो ज्ञात हुआ तुम न जाने कहाँ चली गई हो ?

कुमुद—हाँ चले जाने के सिवा मेरे पास चारा ही क्या था ? मेरी माँ ने कहा—अपना पाप रात्रि के अन्धकार में चुपचाप नदी में प्रवाहित कर दो।

सुरेन्द्र—तो फिर (उठ बैठता है।)

कुमुद—लेकिन विधाता ने मेरे मातृत्व को भार नहीं दिया था। मैं माँ थी—किन्तु, माँ बनने की अधिकारिणी नहीं थी। समाज मुझे माँ के रूप में स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं था। यदि समाज से विद्रोह करना चाहती तो उसके लिए एक ही रास्ता था।

सुरेन्द्र—क्या ?

कुमुद—यही कि मैं बाजार में बैठकर रूप का व्यापार करती। निर्लज्जता की ओढ़नी ओढ़कर समाज के कर्णधारों को अपने रूप से घायल करती। किन्तु मुझे यह जीवन पसन्द न था। मैंने तुम्हें अपना शरीर देकर अपराध किया था किन्तु उस पाप को पुण्य बनाने की मुझे आशा थी। जिस दिन यह आशा टूट गई—मुझे अपना जीवन अपरिचय के अन्धकार में छिपाना आवश्यक

हो गया ।

सुरेन्द्र—लेकिन तुम अपने ही घर क्यों नहीं रहीं । समाज से क्यों डरीं । समाज के सामने मुख्य अपराधी को उपस्थित करने में क्यों झिझकीं ?

कुमुद—इसलिए कि समाज का आधार नारी का आत्म-समर्पण और कष्ट सहन है । जिस दिन मैं सत्य को प्रकाशित करती उस दिन तुम और तुम्हारा सम्पूर्ण परिवार समाज के कोप की आँधी में उड़ जाता या तुम धन के बल से उसका वेग सह भी लेते तब भी परिवार की आन्तरिक शान्ति तो सदा के लिए समाप्त हो ही जाती । जिस कार्य में समाज का आशीर्वाद नहीं है वह शान्ति प्रद हो ही नहीं सकता ।

सुरेन्द्र—किन्तु, समाज का प्रत्येक नियम व्यक्ति को मान्य ही होना चाहिए क्या ?

कुमुद—नहीं ! समाज की कट्टरता मानव की गति को रोकती है । मैं कहती हूँ समाज से खुलकर विद्रोह करने का साहस करो—छिपकर पाप करने की कायरता से तुम समाज को जीत नहीं सकते ।

सुरेन्द्र—यह विवेक तुमने कहाँ पाया ?

कुमुद—यह तो भारतीय नारी के प्राणों में बसा हुआ है । यह नई रोशनी की चकाचौंध थी जिसने मुझे एक क्षण के लिए भुलाकर तुम्हारे पशुत्व का शिकार बन जाने दिया ।

सुरेन्द्र—उस पशु से तुम घृणा करती हो ?

कुमुद—घृणा ! यदि मैं नारी हूँ—तो जिसे एक बार भूल से भी अपना बनाया है—उसे जीवन भर भूलना असम्भव है । तुम्हारा पाप ही मेरे लिए सब से बड़ा वरदान है । तुम्हारी स्नेह-छाया या मृत्यु की गोद ये दो ही चीजें हैं जो मुझे आश्रय दे सकती हैं ।

सुरेन्द्र—लेकिन क्या तुम मुझे आश्रय नहीं दे सकतीं ?

कुमुद—एक दिन मैंने तुमसे आश्रय माँगा था ।

सुरेन्द्र—और मैंने इन्कार किया था क्या उसका बदला लोगी ? मुझे फिर उसी रात दिन जलाने वाले वैभव की कठोर गोद में फेंक देना चाहती हो ।

कुमुद—मेरा वश होता तो मैं आठों पहर तुम्हारी सेवा करती। वासना ने मुझे तुम्हारे पास पहुँचाया। विवेक ने दूर कर दिया। अब क्या फिर वासना के प्याले पीने होंगे ?

सुरेन्द्र—नहीं कुमुद! समय की आग ने मेरे वासना के पशु को मार डाला है। मैं तो तुम्हें अपने गृह-मन्दिर की देवी बनाकर ले चलना चाहता हूँ या तुम्हारे साथ गरीबी के कष्ट सहकर अपने जीवन को सार्थक करना चाहता हूँ। मुझ से यह कृत्रिम और झूठा जीवन नहीं बिताते बनता। आज मेरे घर में मेरा कोई नहीं है। माँ गईं—बाप गए। मेरे माता-पिता ने जिस उच्च कुल की शिक्षिता लड़की से मेरा विवाह किया है—वह विवाह को केवल एक व्यापार समझती है। इस व्यापार में मुझे कोई रस नहीं आता।

कुमुद—मैं अपनी एक बहन का अधिकार कैसे छीन सकती हूँ।

सुरेन्द्र—उसका मुझ पर जरा भी मोह नहीं है कुमुद! इस विस्तृत संसार में रहने के लिए उसे बहुत जगह है। उसे केवल धन चाहिए वह मैं उसे दे सकता हूँ—इससे अधिक वह कुछ नहीं चाहती।

कुमुद—लेकिन जब जवानी का वेग कम होगा—तब उसे किसी चीज की जरूरत पड़ेगी सुरेन्द्र बाबू। उस समय उसे आप नहीं मिलेंगे तो दुख होगा। उसे आकाश में स्वच्छन्द उड़ने वाली तितली न बनने दो। पुरुष को कभी-कभी नारी पर शासन करना आवश्यक है। इसी तरह नारी को पुरुष पर अधिकार स्थापित करना भी। आज जो पुरुष नारी-स्वातंत्र्य की आवाज उठा रहे हैं वह केवल इसलिए कि दूसरे की नारियों से मिलने में उन्हें सुविधा हो। यह उनकी मनुष्यता की नहीं पशुता की आवाज है। तुम पुरुष बनो और पुरुष की कठोरता ग्रहण करो।

सरेन्द्र—किन्तु, वह मेरी नहीं है। वह किसी और की"

कुमुद—तुम अपने स्नेह से उसके पाप को धो दो। उसका इतिहास भूल जाओ। अपना इतिहास भी भूल जाओ। मनुष्य से भूलें होती हैं—उसे ऊपर उठने का अवसर मिलना चाहिए।

सुरेन्द्र—इतना बलवान मैं नहीं हूँ। मैं उसकी इतनी स्वाधीनता नहीं सह

सका—मेरी दुर्बलता मुझे यहाँ खींच लाई—मेरी निराशा मुझे शराब के रसा-तल में ले चली। शराब की मात्रा दिन-दिन बढ़ चली। उस दिन जब मेरी मोटर पेड़ से टकरा गई थी—मैंने पूरी तरह पी रखी थी। मेरे पास बैठी हुई 'डरोथ' गाती चल रही थी—'उड़ प्यासे पंछी किधर तू नीड़ तेरा जल रहा है।' उस गीत की पहली पंक्ति मेरे कलेजे से आ टकराई, और मोटर भी पेड़ से जा भिड़ी और उस दुर्घटना ने मुझे यहाँ पहुँचा दिया।

कुमुद—कभी-कभी बुराई से भी भलाई निकल आती है।

सुरेन्द्र—निश्चय ही। यहाँ आकर मेरे हृदय का घाव भी मानो भरने लगा। अब तुम्हें यहाँ से मेरे साथ चलना होगा। ताकि फिर ऐसी दुर्घटना न हो। मेरी अतृप्ति का उन्माद केवल तुम्हारा शासन सह सकता है।

[कुमुद का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचता है, इतने में कला कमरे में प्रवेश करती है।]

कला—ठीक। दुर्घटनाएँ करके शराब के बहाने अपनी वासना का आधार खोजना भी आधुनिक पुरुष की बुद्धि का चमत्कार है।

सुरेन्द्र—कला। तुम आ गई हो। और तुमने मेरा सबसे बड़ा पुण्य भरा पाप देख भी लिया है यह अच्छा ही हुआ।

कला—और अब हममें समझौता हो सकता है। मेरी भूलें भी तुम भूल सकते हो। दो दुर्बल हृदय मिलकर बलवान बन सकते हैं। ठीक दो वर्ष हो गए हैं—मैं रोज ही तुम्हारी राह देखती रही हूँ। मेरे पंख आकाश की आधार हीनता में उड़-उड़कर थक गए हैं—मुझे सहारा चाहिए, स्वामी!

[एक पाँच वर्ष का बालक आता है]

बालक—माँ।

सुरेन्द्र—ओ आनन्द, इधर आओ!

[बालक आकर सुरेन्द्र की गोद में आ बैठता है।]

कला—यह कौन है?

सुरेन्द्र—यह मेरा पुत्र है—और यह नर्स इसकी माँ।

घर या होटल ?

कला—(कुमुद से) आज से यह मेरा है। और (सुरेन्द्र बाबू की ओर इशारा करके) ये आज से तुम्हारे। (कुमुद का हाथ अपने हाथ में लेकर) तुम्हें हमारे साथ चलना पड़ेगा। तुम हमारे गृह-मन्दिर की देवी बनकर रहना। यह हमारे घर का कन्हैया होगा।

[आनन्द का मुँह चूमती है]

[पटाक्षेप]

प्रेम अन्धा है

पात्र-सूची

औरंगजेब

मुगल-सम्राट्।

मुराद

औरंगजेब का छोटा भाई।

पार्वती

मुराद की प्रेयसी।

रोशन

मुगल राजमहल की दासी।

पहला दृश्य

[स्थान—औरंगज़ेब का तंबू। समय—रात के दस बजे। तंबू में सुसज्जित पर्यंक बिछा हुआ है तथा विलास-सामग्रियाँ सजी हुई हैं। औरंगज़ेब अकेला विचार-मग्न घूम रहा है।]

औरंगज़ेब—दारा, शुजा और मुराद! मेरी मुरादों के रास्ते के तीन रोड़े। दारा का दिल टूट गया, शुजा बंगाल के जंगलों में ज़िन्दगी की आख़िरी साँसें ले रहा है। रह गया मुराद। वह भोला है—अगर मेरा पासा सीधा पड़ा तो आप ही यह काँटा रास्ते से अलग हो जाएगा।

[रोशन शराब की सुराही और प्यालियाँ लेकर आती है और पर्यंक के पास ही रख देती है।]

औरंगज़ेब—रोशन!

रोशन—जहाँपनाह।

औरंगज़ेब—आज तुम पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। नहीं समझीं। आज तुम्हारे हुस्न का इम्तहान है। इन बड़ी-बड़ी आँखों और लम्बे-लम्बे बालों की ताकत देखनी है।

रोशन—गुस्ताखी माफ़ हो तो मैं आपसे पूछ सकती हूँ कि बड़ी आँखों और लम्बे बालों की ताकत के आप कब से कायल हुए। (मुस्कराती है।)

औरंगज़ेब—रोशन, औरंगज़ेब के पास तुम्हारे सवाल का जवाब देने के सिवा और भी बहुत से काम हैं। हुस्न की ज़ंजीरें बेकारों को गिरफ्तार करती हैं। (लम्बी साँस लेता है।)

रोशन—लेकिन गिरफ्तार होने की चाह तो शायद जहाँपनाह के दिल में भी है।

औरंगज़ेब—ओह! (कराह-सा पड़ता है।)

रोशन—क्या हुआ सरकार !

औरंगजेब—जैसे किसी ने एक सूखी हुई रागिनी छेड़ दी। दिल में तीर सा चुभा दिया। एक दिन औरंगजेब भी मचल उठा था—लेकिन उन दिनों की याद करने से फायदा क्या ? मुझे हिन्दुस्तान का नक्शा बदलना है। जवानी की मदभरी मस्तानी रातों का पन्ना पलटना ही पड़ेगा। रोशन तुम यहीं ठहरो। मैं अभी आता हूँ।

[औरंगजेब का प्रस्थान]

रोशन—मैं आज क्या करने जा रही हूँ। किसलिए करने जा रही हूँ ? वे दिन मुझे अब भी याद आते हैं जब माँ के साथ एक झोंपड़ी में रहती थी। उस समय मेरा नाम प्रकाशवती था। माँ गरीब थी और मैं सुन्दर। अचानक इस वन-कुसुम पर बादशाही भौंरे की नजर पड़ गई। गरीबों की न कोई इच्छा होती है न उनका कोई अधिकार होता है। मुझे राजमहल में आना पड़ा। अब मेरा नाम रोशन है। मुराद प्रारम्भ से ही रंगीली तबीयत का आदमी है उसकी अभिलाषा पर मुझे अपना सर्वस्व समर्पित करना पड़ा—लेकिन मधु के दो घूंट पीकर भ्रमर उड़ गया। और अब वह तिरस्कृत फूल अपने कलंक को दरबार से मिलने वाले वैभव के आवरण में छिपाकर मुसकराने का यत्न करता है।

[वासंती का प्रवेश]

वासंती—वे यहाँ नहीं हैं ?

रोशन—वे कौन शाहजादा मुराद !

वासंती—हाँ बहन वे ही मेरे दिल के राजा। न जाने क्यों मेरा जी उचाट हो रहा है। मैं उन्हें देखना चाहती हूँ।

रोशन—दीवानी हो वासंती तुम। पुरुष की वासना की शिकार मत बनो किसी के बाहु-पाश की बंदिनी मत बनो बल्कि उसे अपने रूप-पाश में बाँधो। शिकार को अधमरा करके दूर खड़ी रहो, उसको छटपटाते हुए देखो और मुसकराओ। देखो कि वह तुम्हारे लिए बेचैन है। तुम उसके लिए क्यों बेचैन होती हो ?

वासंती—मैं क्यों बेचैन होती हूँ, यह मैं स्वयं नहीं जानती। मुराद ने मुझ पर अन्याय किया है लेकिन उस अन्याय को उन्होंने अपने अनन्य स्नेह से धो दिया है। आज मेरा मेरे माँ-बाप के पास हिन्दू-समाज में और मनुष्य-समाज में कोई स्थान नहीं है। मेरा एक-मात्र अवलम्ब है मुराद। वह हिन्दू नहीं है तो क्या पशु है तो क्या, वह मेरा है—मैं उसकी हूँ। वह यहाँ नहीं है—जाऊँ—उन्हें खोजूँ।

[वासंती का प्रस्थान]

रोशन—क्या मैं वासंती से कम सुन्दर हूँ। फिर मुराद वासंती का क्यों है? क्या नारी का सौन्दर्य एक निर्जीव खिलौना है—उसमें कोई शक्ति नहीं। मुराद तुम कितने बहादुर हो कितने साहसी हो कितने भोले हो, कितने लालची हो—और कितने नश्वर हो। आज तुम से बदला लेने का अवसर आ पहुँचा है।

[औरंगजेब का प्रवेश]

औरंगजेब—तो आज का खेल खेलने के लिए तुम तैयार हो? अगर जीत गई तो मालामाल कर दूँगा तुम्हें।

रोशन—मालदार होने से क्या बहुत सुख मिलता है शाहजादा साहब!

औरंगजेब—रोशन मालदार होने में सुख है या दुःख इसे समझ पाना मुश्किल है—लेकिन देखने में यह आता है कि माल की ख्वाहिश सभी को है। (आँखों से इंगित करता हुआ) इस वक्त तुम जाओ। मैं जब बता जाऊँ—तब आना।

[रोशन का प्रस्थान दूसरी ओर से मुराद का प्रवेश]

औरंगजेब—मेरे बहादुर भाई! (मुराद को गले लगाता है)

मुराद—(बैठते हुए) आह! बहुत थक गया हूँ। आज शिकार खेलते-खेलते बहुत दूर चला गया।

औरंगजेब—यही तो तुम में ऐब है भाई! तुम जिस काम में लगते हो उसमें डूबते ही चले जाते हो—न दिन देखते हो न रात न खाना न पीना।

मुराद—मेरे पास वक्त बहुत थोड़ा है—औरंगजेब! मैं अपनी तारीफ

नहीं सुनना चाहता। मतलब की बात करो। अब दारा और शुजा दोनों की ताकतें खत्म हो चुकी हैं। अब तुम्हें अपना वादा पूरा करना चाहिए।

औरंगजेब—औरंगजेब ने कुरान शरीफ की कसम खाकर जो वादे किए हैं वे सब पूरे होंगे—तुम हिन्दुस्तान के बादशाह बनोगे और औरंगजेब इस्लाम की खिदमत करने वाला फकीर। तुम थक गए हो—आज रात यहीं आराम करो। मैं रोशन को भेजता हूँ।

[औरंगजेब का प्रस्थान]

मुराद—रोशन! जैसे एक सोया हुआ सपना जाग रहा है। एक मासूम फूल को मैंने शाख से तोड़कर फेंक दिया। रोशन कभी मुराद की महबूबा थी आज औरंगजेब की दासी है।

[रोशन का प्रवेश]

रोशन—भारत के भावी सम्राट् को रोशन सलाम करती है। (कोर्निश करती है।)

मुराद—तुम हो रोशन?

रोशन—मैं हूँ। अफसोस कि मैं हूँ—जीती जागती। मैं मर नहीं सकी—क्योंकि जिस दिल में एक जिन्दादिल आदमी की याद जिन्दा है उसको कब्र में मैं बन्द नहीं करना चाहती। रोशन जिन्दा है—लेकिन प्रकाश मर गई। रोशन जिन्दा है।

मुराद—लेकिन मुराद भी तो प्रकाश के साथ ही मर गया।

रोशन—मैं उसे जिन्दा करूँगी।

मुराद—और प्रकाश को भी।

रोशन—हाँ प्रकाश को भी—अगर तुम चाहते हो तो। तुम थक गए हो—रात काफी हो चुकी है। लाइए, आपके बदन से हथियार खोल दूँ—ताकि आप आराम कर सकें। (रोशन मुराद के सब हथियार उतारकर अलग रख देती है। हाथ पकड़कर मुराद को पलंग पर लिटा देती है।)

मुराद—आज मानो मुझे नई जिन्दगी मिल रही है।

[रोशन शराब का प्याला भरकर देती है मुराद बैठकर प्याला लेता है ।]

रोशन—अगर आप पुनर्जन्म पर विश्वास करते तो मैं कहती—आज वास्तव में आपको नया जन्म मिल रहा है । अगर आपको असह्य न जान पड़े तो मैं पास बैठकर गाऊँ ?

मुराद—(शराब का प्याला पीकर रख देता है और लेट जाता है ।) जरूर ! मैं आज ऐसी नींद सो सकूँगा जैसी कभी नहीं सोया !

रोशन—(गाती है और मुराद के पैर दबाती है ।)

प्रेम की छाया में मन सो जा ।
कांटे तेरे लिए बिछाए ।
विष भरकर प्याले में लाए ।
वे तेरा सिर लेने आए ।
तू तो गर्क़ नशे में हो जा ।
प्रेम की छाया में मन सो जा ।

मुराद—क्या कहा ! विष भरकर प्याले में लाए ।

रोशन—जी मैं मन से कह रही हूँ । यह मन बहुत चंचल है । कभी कभी उसे जहर पिलाकर मार डालना पड़ता है ।

मुराद—मैं भी मन की तरह चंचल हूँ । मुझे मारने के लिए भी पिलाओ । दो और दो ।

[रोशन शराब डालकर देती है ।]

मुराद—(बैठकर शराब पीता है) ऐसा जान पड़ता है रोशन कि आज मेरी जवानी की आखिरी रात है । तुम्हारे हुस्न की जंजीरों ने बहादुर मुराद की नस-नस को जकड़ लिया है । (शराब का प्याला खाली करके रोशन को देता है, रोशन प्याला सुराही के पास रखती है । मुराद फिर लेट जाता है । और रोशन फिर पैर दबाने लगती है ।)

मुराद—तुमने गीत अधूरा ही क्यों छोड़ दिया रोशन ! तुम्हारे संगीत में शराब से भी ज्यादा नशा है । जैसे हरिण वीणा की तान पर, जैसे साँप बीन

की आवाज पर पागल हो जाता है वैसा ही मैं तुम्हारे गीत पर पागल हो रहा हूँ। रोशन, तुम गाओ!

रोशन—(गाती है)

कुछ-कुछ दोनों रूठे लगते,
कहीं न अपने भी हैं अपने
छलछल पानी नहीं छलकते,
छलछल के दरिया में खो जा।
मन मन की छाया में खो जा।

मुराद—वासंती—नहीं-नहीं रोशन पास आओ।

रोशन—(मुराद के पास आकर सिर झुकाती है।) अभी किसका नाम लिया था आपने! आपके दिल में तो वासंती है। रोशन के लिए वहाँ स्थान कहाँ?

मुराद—तुमने वासंती को तो देखा है न?

रोशन—क्यों नहीं?

मुराद—मेरी आँखों से देखा है?

रोशन—नहीं अपनी आँखों से!

मुराद—वह कैसी है?

रोशन—मौत से भी ज्यादा सुन्दर!

मुराद—क्या वह मुझे प्यार करती है?

रोशन—मौत से भी ज्यादा भयानक है। वह इस दुनिया की नहीं सपनों की दुनिया की रहने वाली है।

मुराद—(रोशन का हाथ अपने हाथ में लेता है) रोशन तुम्हारा हाथ गुलाब के फूल से भी ज्यादा कोमल है। (मुराद रोशन की हथेली अपने कपाल पर रख लेता है। रोशन धीरे-धीरे उसका कपाल दबाती है। कुछ क्षणों पश्चात् मुराद को नींद आ जाती है। रोशन मुराद को जाकर लिटा देती है।)

[सहसा वासंती का प्रवेश]

रोशन—तुम यहाँ फिर आ गई? एक रात भी मुराद का वियोग नहीं सह

सकती। जीवन बहुत लम्बा है और अगर साथी छूट जाए तब तो यह लम्बाई असह्य हो जाती है। तुम वियोग की ज्वाला सहना सीखो। आगे काम आएगी।

वासंती—यह कौन सो रहा है? मुराद है? मेरी जंजीरों से छूटकर यह तुम्हारे पास आएगा। नहीं मैं तुम दोनों का खून कर दूंगी।

[सहसा सिपाहियों के साथ औरंगजेब का प्रवेश]

औरंगजेब—(सिपाहियों से) घेर लो काफिर को।

[सिपाही मुराद को सोते हुए घेर लेते हैं। वासंती चौंककर मुराद से लिपट जाती है। मुराद जाग पड़ता है। अपने-आपको सिपाहियों से घिरा पाकर भौंचक्का हो जाता है।)

मुराद—कौन औरंगजेब! रोशन! औरंगजेब तुमने मुझ पर भी हाथ साफ किया और रोशन तुमने भी बदला लिया!

वासंती—मेरे जीते जी कोई तुम्हारा बाल बांका न कर सकेगा मुराद!

औरंगजेब—तुम्हें इज्जत के साथ ग्वालियर के किले में रखा जाएगा। छुटकारे की कोशिश बेकार है। तुम बादशाहत करने के लिए नहीं पैदा हुए। जो हुस्न की जंजीरों में जकड़ा हुआ है उसके हाथ में सल्तनत की बागडोर नहीं दी जा सकती!

मुराद—काश तुम लड़ाई के मैदान में होते!

औरंगजेब—तुम्हारी यह ख्वाहिश पूरी न हो सकेगी। बोलो, तुम ग्वालियर के किले में रहने को तैयार हो?

मुराद—अफसोस मुझे यह मानना ही पड़ेगा!

औरंगजेब—तुम दारा और शुजा से ज्यादा समझदार हो। तुम्हें जो चीज सबसे ज्यादा प्यारी हो उसे भी साथ ले जा सकोगे। बोलो तुम क्या चाहते हो?

मुराद—सिर्फ वासंती!

रोशन—सिर्फ वासंती!!

वासंती—सिर्फ वासन्ती!! (मुराद के पैरों पर गिर पड़ती है। मुराद उसे उठा लेता है।)

मुराद—उठो वासंती! मेरे आसमान में सिर्फ एक चांद चमकेगा और

उसे देखते रहने के सिवाय किशोर के पास कुछ काम न होगा ।

औरंगजेब—तो फिर ग्वालियर जाने के लिए तैयार रहो । चलो ।

[सब का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—ग्वालियर के किले में सूर्य-कुण्ड का किनारा । समय—प्रभात । बासंती नहाने के पश्चात् सूर्य की ओर मुँह करके खड़ी है और बाल सुखा रही है । उसके अंग-अंग से यौवन और स्फूर्ति का मद झर रहा है ।]

बासंती—(गान)

मैं रवि बनकर दिन में आती ।
निशि में शशि बनकर मुसकाती ।
मेरे केश घटाएँ काली ।
मेरी आँखें मद की प्याली ।
मैं अपनी छवि पर मतवाली ।
दुनिया को मदमस्त बनाती
मैं रवि बनकर दिन में आती ।
निशि में शशि बनकर मुसकाती ।
मुझ पर दुनिया स्वर्ग बहाती,
चरणों पर जीवन रख जाती
मैं वसुधा को खेल खिलाती,
उसको जी-भर नाच नचाती ।
मैं रवि बनकर दिन में आती ।
निशि में शशि बनकर मुसकाती ।

याद आज मुझे अपने जीवन का वह सूर्योदय याद आता है जब इसी भाँति मैं अपनी जन्मभूमि गुजरात के एक गाँव में नर्मदा के तट पर नहाने के बाद बाल सुखा रही थी। पहली बार मुराद ने मुझे यहीं देखा था। उसने मुझे अपने जीवन का सूर्य समझा और मैंने ? क्या बतलाऊँ ! सुन्दर तो वह मुझे तब भी जान पड़ा था और आज भी जान पड़ता है। लेकिन क्या मैं उसे प्यार करने लगी थी ? वह मैं नहीं जानती। वह मुसलमान है और मैं हिन्दू। दिल मिलने पर भी स्वभाव तो नहीं मिल सकते ! फिर भी प्राण बेबस हो ही उठे। दिल तो जाति-पाँति नहीं मानता। मुराद भारत-सम्राट् का पुत्र था। उसकी निगाह जिस फूल पर पड़ गई वह उसके विलास-भवन में न पहुँचे यह कैसे सम्भव था। मुझे आना पड़ा, धर्म-संस्कार, माता पिता का स्नेह, जन्म-भूमि की ममता और मन का विद्रोह सभी कुछ दबाकर मुझे उसके वासना-कुंज में आना ही पड़ा ! एक दिन बाद ही मैं समझने लगी कि प्रेम, न्याय, धर्म, संस्कार और प्रायः सभी की धारणाएँ हैं। वासना की लहरों में बहते रहना जीवन की चरम सार्थकता है। मुराद वीर है, सुन्दर है, बलिष्ठ है और उदार है वह सौन्दर्य के चरणों पर सिर झुकाना जानता है—इससे अधिक मैं क्या पा सकती थी। आज मैं मुराद के एकान्त जीवन की एक-मात्र सहचरी हूँ और वह मेरे मानित जीवन का ऐश्वर्य।

[एक दासी का प्रवेश]

दासी—बेगम साहिबा क्या आज यहीं दोपहर काटने का विचार है ? दरवाजे पर भिखारियों की भीड़ लग गई है।

बासंती—भिखारियों की भीड़ ! भरमा संसार में इतना वैषम्य क्यों है ? मनुष्य को पेट भरने के लिए इतना परिश्रम क्यों करना पड़ता है ? मनुष्य को हँसते-गाते प्यार करते जीवन बिताने का अवकाश क्यों नहीं मिलता।

सरला—वैषम्य से ही संसार है ? आप शाहजादा मुराद की बेगम है और मैं आपकी दासी। यह उत्तम-अधम कर्मों का फल है। यह सब सोचने से क्या लाभ !

बासंती—मुराद औरंगजेब की दया पर निर्भर है, मैं मुराद के सहारे पर

खड़ी हूँ। मेरे दरवाजे पर भी भिखारी खड़े हैं। इस तरह मनुष्य दया के नाम पर अपना बड़प्पन प्रकट करता है। क्या कभी ऐसा दिन नहीं आ सकता जब सब समान हो सकें ?

सरला—वैषम्य ही तो सौन्दर्य है।

पार्वती—अर्थात् गुलाब होवे और काँटे न होवें तो गुलाब सुन्दर न जान पड़े ?

सरला—गुलाब की कोमलता तभी जान पड़ती है जब काँटा चुभता है। औरंगजेब न होता तो शाहजहाँ और दारा की उदारता की याद क्यों आती ? आज यद्यपि शाहजादा मुराद इस किले में नजरबन्द है फिर भी ग्वालियर में बल्कि सारे देश में इनके समर्थकों का अभाव नहीं। फौज के सिपाही—जिन्होंने इनके साथ रहकर लड़ाई में तलवार चलाई थी और मनमाने इनाम पाए थे जिनके साथ इन्होंने समय बिताए थे—आज भी इनके लिए जान देने को तैयार हैं। शाहजादा मुराद आज बन्दी है और औरंगजेब बादशाह। यह केवल विधि विडम्बना है। एक बार भी यदि वह ग्वालियर के इस भयानक किले से बाहर आ पाते तो इनकी तलवार से दिल्ली का सिंहासन काँप उठता। औरंगजेब का दिल दहल उठता।

पार्वती—लेकिन सरला बादशाह बनने में क्या सुख है ? सारे देश की चिन्ता षड्यन्त्रों का भय। अपना कोई अस्तित्व नहीं। छि: बादशाह ! क्या रखा है बादशाहत में ? यहाँ हम [illegible] आराम है नृत्य और गान की लहरें हैं। दिन गुजर जाते हैं रातें कट जाती हैं। हमें और क्या चाहिए ? संसार के रङ्ग मंच में पहुँचकर मैं अपने मुराद से वंचित नहीं होना चाहती। अच्छा अब हम चलें।

[एक ओर से दोनों का प्रस्थान—दूसरी ओर से दो फकीरों का प्रवेश जो वास्तव में सैनिक हैं—एक का नाम है मोहम्मद दूसरे का हसन।]

हसन—भाई मोहम्मद ! कुछ भी कहो, बादशाह बनने के काबिल तो शाहजादा मुराद ही है। वह सिपाहियों को अपने सगे भाई की तरह मानते रहे। इनके वक्त में मौज थी—लड़ाई के बाद खूब नाच-गाना होता था—खूब

इमाम बैठते थे—लेकिन औरंगजेब ! वह तो क़यामत की तस्वीर है । सिपाहियों की तो बात छोड़ो उसके सामने तो सिपहसालारों की भी कोई हस्ती नहीं ।

मोहम्मद—तुम ठीक कहते हो हसन ! शाहज़ादा मुराद न सिर्फ़ रहमदिल है बल्कि बहादुरी में भी कोई उसका सानी नहीं । छत्रसाल हाड़ा से लोहा लेना अकेले औरंगजेब के काबू की बात न थी । औरंगजेब ने धोखा देकर मुराद को गिरफ्तार न किया होता तो हम लोग देख लेते कि औरंगजेब कैसे बादशाह बनता है ।

हसन—मुझे तो अभी उम्मीद है कि हम उन्हें आज आज़ाद कर लेंगे । फ़कीर के वेश में हम यहाँ आते रहे हैं क्या वह बेकार जाएगा ? यहाँ के सारे भेदों को हम जान चुके हैं । औरंगजेब जब मुग़लों को भी नहीं छोड़ता तो हिन्दुओं को तो जाने ही क्यों लगा ? उसकी आँखों से तो हमेशा चिनगारियाँ बरसती हैं । वह न जाने किस ख़याल में रात-दिन खोया रहता है । कब किस पर उसके सितम की तलवार उठेगी इसका कुछ पता नहीं । रोज उठकर हमें
कर देखना पड़ता है कि सर धड़ पर मौजूद है या नहीं ।

मोहम्मद—मुराद को जो खर्च शाही ख़ज़ाने से मिलता है उसका तीन चौथाई हिस्सा वह हम-जैसे मुग़ल सरदारों की परवरिश और गरीबों की मदद में खर्च कर देता है । ऐसे आदमी को हम जान देकर भी आज़ाद करेंगे ।

हसन—बेशक !

[नेपथ्य से गाने की आवाज़ सुनाई देती है]

नेपथ्य में गान—

रे निर्झर क्यों बेकल रहता ?
तू तो था कुदरत का झरना
क्यों माया बन्धन में रहता ।
धाम गुलामी के दुख सहता ।
तुझसे पवन नित्य है कहता !
रे निर्झर क्यों बेकल रहता ?

मोहम्मद—मालूम होता है रोशन आ गई है । वह भी गजब की औरत

है। इसकी मदद न होती तो हमारे कई काम अधूरे पड़े रहते। चलो अब हम चलें।

[एक ओर से दोनों का प्रस्थान दूसरी ओर से रोशन का गाते हुए प्रवेश]

रोशन—(गान)

रे निर्झर क्यों बँधकर रहता?

(गाना बन्द करके पूर्ण-कुण्ड के किनारे पर बैठ जाती है) सारी तैयारी हो चुकी सिर्फ मुराद को तैयार करना है। उस दिन मैंने क्यों औरंगजेब के बहकाने में आकर मुराद को बन्धन में उलझाया? यह कैसा भयंकर प्रतिशोध था। बासन्ती तो आज भी उसके हृदय पर राज करती है—रोशन—अर्थात् प्रकाश—अब भी अन्तर्ज्वाला में जल रही है। बासंती को पराजित करने के लिए मैंने मुराद को गिरफ्तार कराया और बासन्ती फिर भी जीती। एक बार फिर होड़ लगी है। इस बार बासन्ती के रूप जाल से मुक्त करने के लिए इतना खतरा झेलकर मुराद को किले के बाहर ले जाने का प्रबन्ध कर रही हूँ। देखो क्या होता है। (फिर गाने लगती है)

रे निर्झर क्यों बँधकर रहता?

[गाते-गाते प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—ग्वालियर के किले में मुराद का भवन। बासंती शराब की प्याली हाथ में लिए खड़ी है। मुराद बैठा है।]

मुराद—(हाथ में प्याली लेते हुए) बैठो बासंती! मेरे लिए सारी दुनिया पुरानी हो गई, लेकिन तुम अभी तक नई हो। तुम सदाबहार फूल हो

बासंती ! तुमने मेरे सूने दिल की बस्ती को भर रखा है। तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ क्या करूँ क्या कर सकता हूँ ? सोचा था तुम्हें हिन्दुस्तान की मलिका बनाता लेकिन मैं क्या करूँ ? मैंने तुम्हें असीर कर लिया। चमन में चहचहाने वाली बुलबुल को कफ़स में डाल दिया।

[प्याली पीकर रख देता है]

बासंती—तुम व्यर्थ व्यथित होते हो। तुम ही मेरे चमन हो प्रियतम ! तुम्हीं मेरी दुनिया हो हृदयेश्वर। तुम्हीं मेरे धर्म हो सर्वस्व ! मैं यह नहीं जानती कि सुख क्या है ? मैं स्वर्ग को नहीं जानती। मैं सिर्फ इतना जानती हूँ कि मैं तुम्हारे बिना एक घड़ी भी जी नहीं सकती। तुम मुझसे एक घड़ी के लिए भी दूर होने का यत्न न करो मुराद।

मुराद—तुमसे दूर होने की कोशिश ! नहीं बासंती मैंने तुम्हें हिन्दुस्तान की सल्तनत के एवज में पाया है। मौत ही मुझे तुमसे जुदा करेगी।

बासंती—मौत ! हाँ मौत को आने दो। हम दोनों ही उसकी गोद में बैठ जाएँगे। दुनिया के आकाश में हमारी स्मृति युग-युग तक दो नक्षत्रों की तरह चमकेगी। मैं सोचती हूँ—मुराद दुनिया में तुम होते और मैं होती—और कोई न होता। न फूल न होते—ये तारे न होते। दुनिया के धन्धे न होते शून्य में हम-तुम दोनों होते। समुद्र में दो बुद-बुदों की तरह चलते और पास आकर एक होकर मिट जाते। तुम नहीं जानते मुराद कि मेरे दिल में न जाने क्यों एक आग-सी जलती रहती है—अतृप्ति की आग।

मुराद—क्यों क्या तुम्हें मैं प्यार नहीं करता ?

बासंती—क्यों नहीं ? इतना करते हो जितना शाहजहाँ ने मुमताज को नहीं किया।

मुराद—दुनिया शाहजहाँ के मोहब्बत-भरे दिल की तस्वीर ताजमहल की शक्ल में सदियों तक देखती रहेगी। और मुराद का मोहब्बत भरा दिल ग्वालियर के किले के पत्थरों में दबा रहेगा। उसे कौन याद करेगा बासंती !

बासंती—न करेगा न सही। किसी के याद करने न करने से हमारा क्या बनता-बिगड़ता है। आज तुम कुछ उदास जान पड़ते हो मुराद ! क्या

बात है ?

मुराद—कुछ नहीं वासंती ! एक गीत सुनाओ !

वासंती—सुनो—

मेरे पास निकट आ जाओ !

आज तरंगें उठतीं मन में

ज्वार उठ रहा है जीवन में

पागलपन छाया यौवन में

उसको आकर प्यास बुझाओ !

मेरे पास निकट आ जाओ !

किरणें तो आती रहती हैं,

प्रेम-कथा दिल की कहती हैं

लहरों में मिलकर बहती हैं,

तुम भी आ मुझमें मिल जाओ !

आओ, पास निकट आ जाओ !

मुराद—तुम्हें अभी तक पूरी नजर आती है, वासंती !

[नेपथ्य में गान]

रे निर्झर क्यों बेकल रहता ?

मुराद—वासंती ! दूसरे कमरे से मेरी तलवार ले आओ।

वासंती—अभी प्यार, अभी तलवार ! यह क्या बात है ?

मुराद—कुछ नहीं तुम तुरन्त तलवार ले आओ। मेरी दुश्मन रोशन ! वह यहाँ भी आ गई है ! तुम जाओ मेरा काम करो।

[वासंती का प्रस्थान दूसरी ओर से रोशन का प्रवेश]

मुराद—तुम यहाँ भी आ गई हो ?

रोशन—हाँ मैं एक बार पहले आई थी तुम्हें कैद में डालने आज आई हूँ आजाद करने।

मुराद—किस लिए ! क्या तुम्हें मेरे कैदखाने का सुख नहीं सुहाता ?

रोशन—मैंने बहुत बड़ा गुनाह किया था शाहजादा सलामत ! आज तौब

साल हो गए मैं रात-दिन उसी दिन की बात को याद करती हूँ जब मैंने तुम्हें धोखा दिया था। उस वक्त मैं इन्सान नहीं रही थी हैवान हो गई थी। तुम हुस्न पर जान देते हो मुराद! और हुस्न तुम्हारी जान लेता है! धोखा देने वाला हुस्न खुद एक धोखा है मुराद! ये जवानी की लहरें दो दिन में खत्म हो जाएँगी। बासे फूलों की तरह बासंती और रोशन सड़क पर पड़ी होंगी मुराद! तुम मर्द हो। जाओ! जिन्होंने तुम्हें जंग के मैदान में देखा है वे आज भी तुम्हारे लिए सिर देने को तैयार हैं। किले के बाहर घोड़े तैयार हैं। तुम्हें उतारने के लिए सीढ़ियाँ लगा दी हैं। चलो देर न करो। अभी चलो!

मुराद—ठहरो बासंती से विदा ले लूँ।

रोशन—इस वक्त भी बासंती! औरंगजेब की जंजीरों ने नहीं तुम्हें हुस्न की जंजीरों ने कस रखा है। मुझे तुम पर तरस आता है, मुराद!

मुराद—तुम ज़रा बाहर ठहरो! मैं एक घड़ी में आया।

[रोशन का प्रस्थान]

मुराद—अहहा! मैं आज़ाद हो जाऊँगा। कौन आज भी मुझ पर जान देती है। औरंगजेब देखेगा कि मुराद मुर्दा नहीं है।

[बासंती का तलवार लेकर प्रवेश]

मुराद—(बासंती से तलवार लेकर) बासंती मैं जाता हूँ। तुम्हें हिन्दुस्तान की मलका बनाने जाता हूँ।

बासंती—मुझे छोड़कर जा रहे हो?

मुराद—तुम्हें और पास लाने के लिए दूर जा रहा हूँ। मुझे हँसकर विदा दो बासंती!

बासंती—हँसकर विदा दूँ मुराद! मैं क्या सिर्फ खिलौना हूँ? क्या मैं केवल तुम्हारे सूने मन को भरने का साधन हूँ? मुझे सूने मन के अन्धकार में छोड़कर तुम न जा सकोगे मुराद! तुम्हें आज फिर बादशाहत का लोभ हुआ है। यहाँ तुम्हें कौन-सा दुख है मुराद! तुम और मैं। इसके अतिरिक्त दुनिया में कुछ और भी है।

[रोशन का प्रवेश]

रोशन—तो अभी तक तुम हुस्न की जंजीरों में जकड़े हुए हो। बेवकूफ मुराद! चलो!

मुराद—अच्छा! (चलने लगता है। वासंती मार्ग रोक लेती है।)

वासंती—तुम नहीं जा सकोगे। रोशन तुम इन्हें नहीं ले जा सकोगे।

रोशन—हट जाओ वासंती! पहरेदार आ पहुँचे! पागल मत बनो! जो तुम्हें इतना प्यार करता है उसके लिए मौत का सामान जमा न करो। मुराद की आजादी में सारे हिन्दुस्तान की आजादी है!

वासंती—मैं हिन्दुस्तान को नहीं जानती मैं बादशाहत भी नहीं चाहती मैं सिर्फ मुराद को चाहती हूँ। तुम चले जाओ रोशन!

रोशन—(मुराद से) तुम मर्द हो। तुम्हें एक औरत के जाल में फँसकर अपना फर्ज नहीं भूलना चाहिए, चलो!

[मुराद वासंती को धक्का देकर चला जाता है। वासंती गिर पड़ती है उसके सिर से खून बहने लगता है।]

वासंती—(सिरपर हाथ लगाकर) अच्छा वह मुझे धक्का देकर जा सकता है! मुराद जा सकता है! जिसने मुझसे मेरी जन्मभूमि छुड़ाई, मेरे माँ-बाप छुड़ाए, मेरा सतीत्व नष्ट किया—वह बादशाहत के लोभ में मुझे ठुकरा सकता है! यह असम्भव है। मैं ऐसा नहीं होने दूँगी!

पहरेदार-पहरेदार!

[पहरेदार का प्रवेश]

वासंती—दौड़ो मुराद भागा जा रहा है।

[पहरेदार सीटी बजाता है, अनेक सैनिक दौड़ते हुए आते हैं]

एक पहरेदार—मुराद भाग रहा है उसे पकड़ो!

[सब सैनिकों का प्रस्थान]

वासंती—यह मैंने क्या किया? मैं पागल हूँ! दीवानी हूँ! मैं मुराद से अलग होकर जी नहीं सकती। जिसके लिए मैंने सब-कुछ खोया वह मुझे छोड़ जाए मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकती। मैं अपने लांछित और अपमानित जीवन को लेकर जीना नहीं चाहती। मैं मरूँगी लेकिन अपने प्रेमी के चरणों में ही

प्राण विसर्जित करूँगी ।

[पहरेदार मुराद को पकड़ लाते हैं]

वासंती—तुम आ गए न ? मैंने तुम्हें बुलाया है, मुराद ! आज मेरे जीवन की आखिरी रात है। मेरा प्रेम अन्धा है मुराद। न मैं तुम्हारा भविष्य देखती हूँ न अपना। मैं आठों पहर तुम्हें अपनी आँखों के सामने रखना चाहती हूँ। इतना ही नहीं मैं तुम्हें टुकड़े-टुकड़े करके आँखों में भर लेना चाहती हूँ—टुकड़े टुकड़े होकर तुम्हारे दिल में घुस जाना चाहती हूँ। और तुम मुझसे विदा माँगते हो। पहले मुझे विदा दो मुराद ! (हाथ की हीरे की अँगूठी की कनी मुँह में डालती है। और मुराद के चरणों पर लोट जाती है।)

मुराद—यह तुमने क्या किया वासंती ! तुमने जहर खा लिया ! मुझे भी तो दो दिन पीछे दुनिया से विदा लेनी है। मेरी आज की करतूत के बाद क्या औरंगजेब मुझे जिन्दा रहने देगा ! दो दिन तो और अपने हुस्न की जंजीरों में मुझे कसकर रखतीं, वासंती !

[वासंती का सिर अपनी जाँघों पर रख लेता है। झुककर उसका मुख चूमता है।]

[पटाक्षेप]

वाणी-मन्दिर

पात्र-सूची

कुमार

एक कवि।

चन्द्रप्रकाश वर्मा

'मानव' पत्रिका का सम्पादक।

सरला

कुमार की पत्नी।

मालती

चन्द्रप्रकाश वर्मा की पत्नी।

घनश्याम

सरला का बहनोई।

चन्द्रिका

एक धनी युवती।

डॉक्टर आदि

पहला दृश्य

['आनन्द' मासिक पत्रिका के सम्पादक श्रीयुत धर्मप्रकाश वर्मा का मकान। वर्माजी की पत्नी मालतीदेवी बैठक के कमरे में एक कौच पर बैठी हुई पुस्तक पढ़ने में लीन है। उसके बैठने के ढंग में मादकता है, सिर पर से साड़ी खिसक गई है, बाल बिखरे हुए हैं। कमरा इस ढंग का बना हुआ है कि यौवन का उभार मधुकरों का मन उभारे।]

मालती—(पढ़ते-पढ़ते पुस्तक टेबल पर रखकर, आइने के सामने खड़ी होकर बाल सँवारती हुई) यह कुमार कवि भी एक रहस्य है। इसकी कविता में कितना आकर्षण है। इसकी कविता पढ़ते-पढ़ते हृदय उसके जीवन में एकरूप हो जाना चाहता है। इसकी पंक्ति-पंक्ति वेदना-सिन्धु है। इतनी वेदना प्राणों में पाले यह व्यक्ति संसार में कैसे रहता है। इसके आँसुओं को मैंने केवल कविताओं में देखा है यदि आँखों में देखती तो अपने अञ्चल को उससे पवित्र करती।

[वर्माजी का प्रवेश]

वर्माजी—मालती!

मालती—आज तो आप जल्दी लौट आए। आज आपके मित्रों ने इतनी जल्दी छोड़ कैसे दिया! आज आपके मुँह से ह्विस्की की सुगन्धि क्यों नहीं आ रही देवता!

वर्माजी—तुम मेरा मजाक उड़ाती हो मालती! सदा रोनी सूरत बनाए बैठे रहना संसार के आनन्द-उत्सव से वंचित रहना क्या इन्सानियत है? तुम्हारे कुमार कवि की तरह आँसुओं की शराब पीकर बेहोश हो जाने वाले तो मेरे मास्टर नहीं हैं।

मालती—मेरे कुमार कवि! यह आप क्या कहते हैं?

वर्माजी—यह मैं कुछ नहीं कहता। इसे मैं बुरा नहीं कहता। बात-बात

अच्छा लगता है, तो इससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। उस व्यक्ति में इतना साहस नहीं है कि वह अपनी सीमाएँ पार करे। वह तो केवल स्फूर्ति खोजता है। तुम उसकी स्फूर्ति बन सको तो संसार का कल्याण ही करोगी।

मालती—तुम बड़े नीच हो!

वर्माजी—संसार में नीच-ऊँच कुछ नहीं मालती! यह केवल पैसा है जो मनुष्य को नीच-ऊँच बनाता है। तुम्हारा कुमार कवि सिकाल में राजा रईसों मन्त्रियों और ऊँचे पदाधिकारियों के साथ सहयोगों में नहीं बैठ सकता और तुम्हारा यह नीच बड़ी ऊँचा-से-ऊँचा आसन पा सकता है। मैं तुम्हारे कुमार कवि की तरह ऊँचा बनकर रहूँ तो बताओ कैसे तो तुम्हारे यह ठाट बने और कैसे मैं ऐश करूँ।

मालती—आत्मा को काला करके से

वर्माजी—हमारी आत्मा कभी काली नहीं होती। हम निर्विकार भाव से सब करते हैं। इन राजा-रईसों से हमारी जीविका चलती है सालों 'आनन्द' पत्रिका के भरोसे बैठे रहें तो बस फाके ही करते पड़ें। ये लोग शराब पीते हैं उनके साथ बैठने योग्य बनने के लिए मुझे भी पीनी पड़ती है। ये लोग वेश्याओं से भी बहलाते हैं मुझे भी ऐसा करना आवश्यक है। ऐसा न करूँ तो वे मुझे पूछें ही क्यों?

मालती—आप धूर्त और निर्लज्ज!

वर्माजी—यह तो व्यापार है मालती! इसमें निर्लज्जता की क्या बात! अब छोड़ो इन बातों को। तैयार हो जाओ सिनेमा चलना है। राव बहादुरपुर के दीवान साहब ने मुझे और तुम्हें सिनेमा के लिए निमन्त्रित किया है।

मालती—मैं नहीं जाऊँगी!

वर्माजी—मैं नहीं जाऊँगी! यह तेरे बाप का घर नहीं है। यह 'आनन्द' सम्पादक श्रीमान् चन्द्रप्रकाश वर्मा का मकान है। क्या तुम्हें मुझे और अपने-आपको गरीब बनाए रखने में सुख मिलता है?

मालती—आपको तो मैं नहीं रोकती!

वर्माजी—मेरे जाने से क्या होगा। तुम्हारे बिना सुख न बनेगा। सिनेमा

हाउस में दो-तीन घण्टे बैठना ही तो है। इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है?

मालती—मुझे वह आदमी बहुत बेहूदा जान पड़ता है। उस दिन जब हम लोग होटल में चाय पी रहे थे तो वह ऐसे देख रहा था जैसे मुझे खा जाना चाहता है।

वर्माजी—लेकिन वह पी तो नहीं गया। ऐसे लोगों को उल्लू बनाकर रियासत के खजाने का कुछ भाग हमारे पेट में हम भर सकें तो इसमें क्या बुराई है।

मालती—तुम निकम्मे हो? मैं नहीं जाऊँगी!

वर्माजी—(कुर्सी पर से ऊपर उठकर) तुम भूल गईं कि हम इंटर में एक दिन तुम्हारी जान उमड़ रही थी। जान पड़ता है तुम पर अब कुमार का जादू चला है?

[कुमार का प्रवेश]

कुमार—यह क्या वर्माजी!

वर्माजी—कुछ नहीं यह पति-पत्नी की हँसी-दिल्लगी है। इसमें मैं कह रहा हूँ।

मालती—नहीं-नहीं इनसे आप कुछ न कहें मैं तैयार होती हूँ।

वर्माजी—हाँ, अब तुम भली लड़की बनी! यह कमरा ठीक है। इसके साथ की साड़ी पहन लो और चलो। अभी आया सिगरेट ले आऊँ।

[वर्मा का प्रस्थान। मालती अलमारी में से साड़ी निकालती है।]

कुमार—(जाते हुए) मैं जाऊँ! आपको कपड़े बदलने हैं।

मालती—नहीं-नहीं मुझे सिर्फ साड़ी बदलनी है, वह आपके सामने भी बदल सकती हूँ। मेरा शरीर आपकी दृष्टि की अपेक्षा पवित्र नहीं है।

[मालती पहनी हुई साड़ी उतार देती है और दूसरी पहनने लगती है। उसकी आँखों से आँसू छलछला आते हैं।]

कुमार—तुम रो रही हो मालती! तुम्हें क्या अभाव है? रोना तो हम जैसे अभागों के लिए है।

मालती—(साड़ी पहनकर) संसार में कौन अभागा है इसे समझने की

बुद्धि घोड़े कीड़ों में है। मेरा जीवन किस नरक की यंत्रणा में जल रहा है य
आप नहीं जानते कुमार! मेरा जी करता है मैं बाहर जाकर मर जाऊँ
(फूट-फूटकर रोने लगती है।)

कुमार—(पास जाकर मालती के आँसू पोंछता हुआ) मालती मैं अकिंचन
अपना भी भार नहीं सँभाल सकता फिर तुम्हारे लिए कुछ करना मेरे लिए
कैसे सम्भव हो सकता है। मैंने तुम्हें अनेक बार हाट-बाजार, खेल-तमाशों और
सैर-सपाटों में हँसते-मुसकराते उछलते-कूदते देखा है। मैंने लोगों के मुँह से
तुम्हारे विषय में विभिन्न बातें सुनी हैं। मैंने तुम्हें उल्लास के आकाश में उड़ने
वाली चिड़िया ही समझा था। आज ज्ञात हुआ कि तुम्हारी आँखों में पानी
भी है तुम्हारे हृदय में आग भी है। बैठ जाओ मालती! अपने हृदय की व्यथा
मुझ से कहो।

[दोनों पास-पास कोच पर बैठ जाते हैं]

मालती—कुमार! आह! मैं वह सब-कुछ नहीं कह सकती। कई बार
मेरा जी करता है मैं भाग जाऊँ। लेकिन मैं उन्हें बहुत प्यार करती हूँ। वे
आए दिन मुझे हंटर से मारते हैं फिर भी मैं उन्हें नहीं छोड़ सकती। वे मेरे
टुकड़े-टुकड़े कर डालें फिर भी मैं उन्हें नहीं छोड़ सकती। लेकिन उन्हें मुझसे
रत्ती भर भी प्रेम नहीं है। वे मेरा मूल्य

[वर्मा जी का प्रवेश]

वर्मा जी—अच्छा तुम तैयार हो गईं। तो चलो। भाई कुमार तुम भी
चलो न। सुनते हैं बड़ी अच्छी तस्वीर है।

कुमार—नहीं मैं घर जाऊँगा।

मालती—नहीं कुमार तुम्हें चलना पड़ेगा। मेरी खातिर।

वर्मा जी—यदि इन्हें काम हो तो जबरदस्ती न करो।

मालती—काम! काम क्या हो सकता है! तुम्हें चलना ही पड़ेगा। राक्षसों
के बीच में एक तो देवता हो। (कुमार का हाथ पकड़ लेती है)

कुमार—अच्छा चलता हूँ।

[तीनों का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

[कुमार का घर। कुमार की पत्नी सरला साधारण साड़ी कपड़े पहने हुए कमरे में बैठी है। कमरे में सुरुचि के चिह्न तो हैं लेकिन गरीबी का अधिकार साफ नजर आ रहा है। सरला अक्सर पुस्तकों की आलमारी साफ करती रहती है।]

सरला—आज वे अभी तक नहीं आए। आह, मेरा भी अदृष्ट है। संसार का अमृत देने के लिए वे विष के घूंट पीते हैं। वे कवि हैं संसार उन्हें आदर की दृष्टि से देखता है इस गौरव ने मुझे कितनी बार प्रफुल्लित किया है।

[एक ५ वर्ष की बालिका का प्रवेश]

बालिका—माँ भूख लगी है।

सरला—बेटी बाबूजी को आने दो।

[बालिका का प्रस्थान]

घर में आज एक दाना भी नहीं है। पास में एक पैसा भी नहीं है। दूध वाले ने दूध बन्द कर दिया है। बच्ची भी ऐसी दुर्दशाओं की अभ्यस्त हो गई है। कैसी चुपचाप चली गई। भगवान् तुम जिन्हें अधिक प्यार करते हो उन पर इतनी आपत्तियाँ क्यों डालते हो। (आँखों में आँसू भर आते हैं। बाहर से 'मिस्टर कुमार, मिस्टर कुमार' की आवाज आती है।)

सरला—अन्दर आ जाइए।

[सरला के भाई घनश्याम का प्रवेश]

घनश्याम—(एक कुर्सी पर बैठकर) बड़ी कठिनाई से मकान मिला।

सरला—कब आए ?

घनश्याम—परसों ही आया हूँ। अब इसी शहर में मुझे रहना है। मेरी यहीं बदली हो गई है।

सरला—बड़ी खुशी की बात है।

[बालिका का फिर प्रवेश]

बालिका—बाबूजी आए या नहीं ! मुझे भूख लगी है ।

सरला—नहीं बेटी अभी नहीं आए ।

[बालिका फिर चली जाती है]

घनश्याम—कुमार बाबू अभी तक नहीं आए । मैंने आज उन्हें देखा तो था । एक स्त्री का हाथ पकड़े हुए कहीं जा रहे थे । वे मुझे नहीं देख पाए और मैंने उन्हें पुकारना अच्छा न समझा ।

सरला—कैसी स्त्री थी वह !

घनश्याम—बहुत सुन्दर ! अप्सरा ! मेरा जी भी करता है, इसी तरह मैं भी उसका हाथ पकड़कर चल पड़ूँ । छोड़ो इन बातों को । यह बताओ तुमने यह क्या हाल बनाया है । घर के भीतर झाँकते ही मेरा दिल काँप उठा । तुम्हारे पति क्या कुछ नहीं कमाते । या कमाकर बाहर खर्च कर आते हैं ।

सरला—जीजा जी आप मेरा अपमान करने आए हैं ।

घनश्याम—तुम्हारा अपमान ! यह क्या कहती हो सरला ! मेरे हृदय में तुम्हारे लिए जो स्थान है उसे क्या तुम नहीं जानती । तुम्हारी बड़ी बहन तो मिट्टी की पुतली है न रूप है न गुण । और तुम

सरला—मुझमें रूप भी है और गुण भी यही तो आप कहना चाहते हैं । आपके मुँह से अनेक बार सुन चुकी हूँ । आपका इस रूप-गुण की प्रशंसा में आशय क्या है ?

घनश्याम—मैं कहता हूँ तुम यह गरीबी का बोझ अपने सिर पर क्यों लादे हुए हो । मैं साफ देख रहा हूँ कि आज तुम्हारे पास बच्चों को पिलाने के लिए दूध भी नहीं है । ऐसे कष्ट तुम क्यों सहती हो ?

सरला—चारा ही क्या है ?

घनश्याम—चारा ही क्या है ? क्या तुम मेरे लिए पराई हो । मेरा घर तुम्हारा ही है ।

सरला—लेकिन इस कृपा का बदला तो आप न चाहिये ?

घनश्याम—बदला क्या ! तुम मेरी आँखों के आगे होगी यह क्या है ?

सरला—समझी जीजा जी! आप आँखों की प्यास बुझाने के लिए आप इतनी कृपा करने चले हैं, कम हृदय की आग...

घनश्याम—तुम तो कवि के साथ रहकर कविता करने लगी हो। कुमार बाबू तुम्हारी कद्र नहीं करते इससे मेरा दिल दुखता है। तुम तो बन्दर के गले में मोतियों की माला की तरह हो।

सरला—आप मेरे अतिथि हैं, तिस पर मेरी बहन के पति हैं। आपके साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकती। नहीं तो आप-जैसे लम्पटों को मैं घर के अन्दर ही घुसने देती।

घनश्याम—सरला तुम नादान हो! बचपन से नादान हो। जब तुम्हारे पिता ने तुम्हारे सामने मेरा और कुमार दोनों का नाम उपस्थित किया था तब भी तुमने एक धनी राय बहादुर के पुत्र को ठुकराकर एक भिखारी कवि को चुना था तब मैंने समझा था जीवन की वास्तविकता तुम्हें अपनी भूल समझा देगी। मैं देखता हूँ, तब तुम नादान थीं आज पागल हो। जान-बूझकर नरक ज्वाला में जल रही हो। तुम इससे आसानी से पार हो सकती हो। कवि के सिर पर बोझ बनकर उसकी कला का स्तर नष्ट कर रही हो क्या इससे उनका कुछ लाभ है? उन्हें स्फूर्ति शहर की अन्य कुमारियों और ललनाओं में मिल जाती है। तुम तो उनके सिर पर एक बोझ ही हो।

सरला—तुम ठीक कहते हो जीजा जी! मैं उनके सिर पर बोझ ही हूँ। मुझे दुख है कि मैंने आपकी कृपा की अवहेलना की। इस समय आप जाएँ, कल इसी समय आएँ और साथ में जीजी बहन भी लेते आएँ। मैं बहुत हल्की बन कर आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी। जो मुझे बोझ समझता है, वह स्वयं भी मेरे ऊपर बोझ है। मैं सब तरह के बोझे-उतारकर आपके पास उपस्थित हूँगी। अब आप जाइए।

घनश्याम—अच्छा नमस्ते!

[घनश्याम का प्रस्थान]

सरला—उफ्फ! अमीरी भी अभिशाप है। गरीब स्त्री को भगवान् रूप क्यों देता है। मैंने सदा पति के यश को ही अपने जीवन की सफलता समझा

है। भूखे पेट सो जाने पर भी कभी अपने भाग्य को नहीं कोसा। उसकी [illegible] समझाने के लिए अपना एक-एक जेवर बेच दिया है। उसकी कथा जिसके चरणों पर हजार सिर झुकाता है क्या साधारण वस्तु है। वह रायबहादुर का बेटा डिप्टी कमिश्नर कुछ रुपयों से मेरा शरीर खरीदना चाहता है! गरीबी तू मनुष्य की कीमत इतनी कम कर देती है। और रुपया तू मनुष्य को राक्षस बना देता है।

[दरवाजे पर किसी के हँसने खिलखिलाने की आवाज आती है]

लो वे आ गए। साथ में कोई स्त्री जान पड़ती है। कैसी हँस-हँसकर बात हो रही है। देखूँ तो ?

[प्रस्थान]

[पट-परि

तीसरा दृश्य

[कुमारी कणिका देवी का मकान। कणिका के पिता शहर के एक धनी रईस थे। उनकी कुछ मास पहले अचानक मृत्यु हो गई। कणिका देवी के अतिरिक्त उनकी कोई सन्तान न थी। कणिका देवी व्यवहारकुशल शिक्षिता लड़की है। वह उस वातावरण में रहती है जहाँ तरु[illegible] जाने का [illegible] को साहस नहीं होता। न जाने कितने हृदयों में उसके धन, गुण और रूप ने लोभ जाग्रत किया किन्तु किसी को अपना प्रार्थना-पत्र उसके चरणों तक ले जाने का साहस नहीं हुआ। वह अपने अध्ययन में व्यस्त रहती है। कणिका और मालती का प्रवेश। दोनों वार्तालाप करते कोच पर बैठ जाती हैं।]

कणिका—मुझे अपने जीवन में एक साथी चाहिए।

मालती—तो साथियों की क्या कमी है। ऐसा कौन युवक हृदय होगा जो तुम्हें पाकर अपने-आपको धन्य न समझे। तुम धन-कुबेर की पुत्री हो अपने

स्वर्गीय पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति की मालकिन हो।

चन्द्रिका—मैं पुरुषों से घृणा करती हूँ मालती। पुरुष है पशु। वह स्त्री को खिलौना समझता है। मैं किसी के हाथ का खिलौना नहीं बनना चाहती।

मालती—लेकिन जो चरणों का दास बनना चाहे।

चन्द्रिका—वह पुरुष ही न होगा। पुरुष अपना स्वभाव नहीं छोड़ सकता। वह पर्वत है, कभी-कभी उसका हृदय द्रवित हो जाता है, लेकिन फिर भी कठोरता ही उसका धर्म है। मैं उस कठोरता को अपने गले का हार नहीं बनाना चाहती।

मालती—फिर क्या चाहती हो?

चन्द्रिका—मैं क्या चाहती हूँ यह मैं स्वयं नहीं जान पाती। मेरे प्राणों की पुकार मुझे ही सुनाई नहीं देती। बहन पुरुष भी तो अकेले जीवन बिता देते हैं, वे पुरुषों में हँस-बोलकर भी अपना जी बहला लेते हैं ऐसा क्या हम स्त्रियाँ नहीं कर सकती। मैं तुम्हें अपनी साथिन बनाना चाहती हूँ।

मालती—क्यों?

चन्द्रिका—इसलिए कि तुम सुन्दर हो। और तुम्हारे साथ रहने में मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है।

मालती—कुछ पुरुष भी ऐसे होते हैं जो नारियों से कोमल होते हैं। जिनके हृदय की आग संसार के लिए शीतल प्रलेप होती है।

चन्द्रिका—ऐसे पुरुष को तुमने कभी देखा है।

मालती—हाँ हमारे शहर के प्रसिद्ध कवि कुमार।

चन्द्रिका—हाँ हाँ उनकी पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं। सच उनकी जैसी कविताएँ मैंने कभी नहीं पढ़ीं। वह हमारे हिन्दी-साहित्य का गौरव है। तुम बहुत अच्छा गाती हो। मैं उनकी 'वेदना' पुस्तक देती हूँ। जरा गाकर उनका एक गीत सुनाओ।

[उठकर आलमारी में से एक पुस्तक निकालकर मालती को देती है]

मालती—(गाती है)

वेदना मेरी न छीनो
वेदना में प्राण मेरे।
तारिकाओं की हँसी से
तुम भरो आकाश अपना।
अप्सराओं के मधुर स्वर
से भरो अधिवास अपना।
फूल-से फूली जगत् में
तुम भरो उल्लास अपना।
मौत के व्याकुल क्षणों में
जगमगाती प्यास मेरे।
वेदना मेरी न छीनो
वेदना में प्राण मेरे।
तुम अपने दीपकों में
तेल-सा भरकर हमारा।
तुम प्रकाशित हुआ कर लो
स्वर्ग का मन्दिर तुम्हारा।
देख ले सपने सुखों के
नींद में संसार सारा।
जब किसी को देख पाए
प्राण के ये प्राण मेरे।
वेदना मेरी न छीनो
वेदना में प्राण मेरे।
यदि कभी लेकर हमारी
वासना संसार होती।
कौन समझेगा किसी के
भग्न उर की मूक बोली।

तुम हुए नीरव व्यथा से
कर रही हो तुम ठठोली !
कौन फोड़े सिर जगत् से
यह निठुर पाषाण है रे !
वेदना मेरी न छीनो
वेदना में प्राण मेरे !

[मालती की आँखों में आँसू आ जाते हैं]

कनिका—तुम रोने लगीं। मेरा भी हृदय भीतर से टुकड़े-टुकड़े हो रहा है। जिस व्यक्ति को इतनी वेदना मिलती है वह जिन्दा कैसे रहता है।

मालती—वह जिन्दा नहीं रहता दूसरों को जिलाने के लिए स्वयं मर जाता है। मैं एक दिन कुमार के घर गई थी। वह दारिद्र्य का अधिवास ! उस अभाव के क्रीड़ागार में रहकर वे तीन प्राणी किस तरह अपने स्वाभिमान को उन्नत करके चलते हैं यह देखकर मैं तो दंग रह गई।

कनिका—तीन कौन ?

मालती—कवि उसकी पत्नी और उसकी बच्ची। पत्नी कितनी सुन्दर है हमारे अमीरों को मिल जाए तो देखकर अपना घर भर लें। बालिका जैसी सुकुमार कि चमेली का फूल। कवि ऐसा कोमल कि तुम्हें मिल जाए तो गले का हार बना लो।

कनिका—तुम अपने दिल की बात कहती हो ?

मालती—हृदय की चाह क्या कभी पूरी हुआ करती है ! मैं उस दिन गई थी—बच्ची भूख से तड़प रही थी। घर में एक दाना भी न था—दूध की। बूंद भी न थी। सरला रात्रि की तरह नीरव थी। कुमार सागर की तरह मर्म्म था। मैं पागल हो उठी। यह है हमारे देश के साहित्य-साधकों के अन्तःपुर की तस्वीर !

[कनिका की आँखों में आँसू आ जाते हैं]

मालती—आ बहन तुम रोने लगीं। हमारे आँसुओं से इन तपस्वियों की समस्या हल नहीं होगी। ये अपने अभावों को संसार के सामने नहीं रखते।

जलते रहते हैं दीपक की तरह नीरव रहकर और संसार को प्रकाश देते हैं।

अम्बिका—मालती यदि इस परिवार की कोई सेवा कर सकूं तो मैं अपने आपको धन्य समझूंगी। तुम मुझे यहां से चलो! चलो अभी चलो।

[दोनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[कुमार का घर। चारपाई पर सरला लेटी हुई है। सारा शरीर काली चादर से ढका हुआ है। घनश्याम का प्रवेश।]

घनश्याम—शायद यह सरला ही सो रही है। सरला! सरला!! गहरी नींद में है। बोलती नहीं है। क्या झकझोरकर जगा दूं। क्या मुझे इसे छूने का अधिकार है! क्यों नहीं कुछ क्षणों के बाद यह मेरी हो जाएगी। (मुंह से चादर हटाता है) ओहो जैसे बादलों में से चांद निकला हो। कितना आकर्षण है तुममें सरला!

[सहसा मालती और अम्बिका का प्रवेश। वे कमरे में घनश्याम को देख कर चौंकती हैं।]

मालती—आप कौन?

घनश्याम—मैं-मैं सरला का बहनोई हूं।

अम्बिका—यहां अकेले में आप क्या कर रहे हैं?

घनश्याम—कुछ नहीं-कुछ नहीं! मैं अपने कुमार बाबू से मिलने आया था। मैंने समझा वे सो रहे हैं। चादर उठाकर देखा तो सरला थी।

मालती—तो इसमें इतने परेशान होने की क्या बात है? तशरीफ रखिए।

घनश्याम—नहीं-नहीं अब जाता हूं। औरतों के बीच में अकेले रहना पाप है। ऐसा कुमार ही कर सकते हैं। इज्जतदार आदमी को अपनी कीर्ति का

ख्याल होता है।

[धनश्याम का प्रस्थान]

मालती—(सरला को हिलाती है) उठो बहन! यह भी कैसी नींद है। (हाथ पकड़कर उठाती है) ओह यह तो पत्थर हो रही है।

[कनिका भी पास आती है। मालती लालटेन लेकर मुँह को गौर से देखती है।]

कनिका—मुझे तो यह उठने वाली अब नहीं मालूम देती।

मालती—हाँ ओठ नीले हो रहे हैं इसने जहर खाया है।

कनिका—बुखार भी नहीं है। तुम यहीं रहो। मैं डॉक्टर को लाती हूँ।

[कनिका का प्रस्थान, मालती सरला के तकिए के नीचे तलाशी लेती है। दो चिट्ठियाँ उसके हाथ लगती हैं।]

मालती—ये चिट्ठियाँ काम पड़ती हैं। पढ़ूँ। (एक चिट्ठी पढ़ती है) "सरला! तुम पर भगवान् ने इतनी कारीगरी इसलिए खर्च नहीं की कि तुम अपने रूप-यौवन को गरीबी की आग में जलाती रहो। मैंने एक डीबी में तुम्हारी चाही हुई चीज भेजी है। तुम मार्ग साफ करके जीवन का वास्तविक सुख ले सकती हो!" (चिट्ठी को पटक देती है) आगे नहीं पढ़ सकती। (दूसरा पत्र खोलती है) "प्रियतम मैं जा रही हूँ। मैं कवि के जीवन का बोझ हूँ। जो वाणी के मन्दिर का पुजारी है उस पर गृहस्थी का बोझ लादना निष्ठुरता है। संसार कवि को पाकर धन्य होता है किन्तु वह यह नहीं जानता कि उसके बीबी-बच्चे भी होते हैं। जो रात-दिन अपने प्राणों का खून पिलाकर संसार को जीवन देता उसके जीवन की रक्षा करना भी आवश्यक है। मैं नहीं चाहती कि तुम कवि का जीवन छोड़कर दूसरा रास्ता पकड़ो इसलिए मैं तुम्हारे सिर से अपना बोझ उठा रही। मेरे जाने का एक कारण और है कि मुझे गरीब की पत्नी जानकर संसार की लोलुप आँखें भी मेरी ओर झाँकने लगी हैं। मैं कवि के गौरव को कम नहीं करना चाहती। मैं जाती हूँ। आकाश के नक्षत्रों में तुम मुझे पाओगे। मुन्नी की व्यवस्था कुछ-न-कुछ हो ही जायगी इसका मुझे विश्वास

[मालती की आँखों से आँसू बह पड़ते हैं। कुमार का प्रवेश]

कुमार—कौन मालती! तुम रो रही हो। क्या हुआ?

[मालती चुपचाप हाथ से पत्र बढ़ा देती है। कुमार पत्र लेकर पढ़ता है]

मालती—कुमार! तुम कवि हो! तुम हर तरह के आघात सह सकते हो। तुम्हारी कोमलता ही वह बल है जो तुम्हें अभेद्य अकाट्य और अमर बनाती है।

कुमार—सरला! (सरला को बाहुओं में कस लेता है) तुम्हारे लाल-लाल अधर बहुत प्यारे थे किन्तु, ये नीले-नीले ओंठ उनसे भी अधिक प्यारे हैं। (चूमता है) कवि को जीवित रखने के लिए तुम मर रही हो शायद नहीं जानती कि मेरी स्फूर्ति तुम हो! मेरी प्रेरणा तुम हो! मेरी गरीबी तुमसे धन्य है। मेरी वेदना तुमसे धन्य है। तुम्हारी मूक सेवा तुम्हारा नीरव प्यार और तुम्हारी कठिन तपस्या ही तो मेरी वीणा के तार हैं। मैं वाणी के मन्दिर का पुजारी हूँ तुम तो साक्षात् वाणी हो। मेरे गीत में तुम्हारा ही स्वर है सरला!

[चन्द्रिका का डॉक्टर को लेकर प्रवेश]

चन्द्रिका—डॉक्टर बैनर्जी! यदि लाख रुपया खर्च करने पर भी सरला के जीवन की रक्षा हो तो मैं खर्च करूँगी!

डॉक्टर—(सरला की छाती की धड़कन देखकर) साँस अभी बाकी है। मैं प्रयत्न करूँगा मिस चन्द्रिका देवी!

चन्द्रिका—डॉक्टर को सौ रुपए का नोट देते हुए, लीजिए! यदि आप इलाज में सफल हुए तो मालामाल हो जाएँगे।

[डॉक्टर सरला के इंजेक्शन लगाने का सामान करता है]

कुमार—आप!

चन्द्रिका—कुमार! मुझे आप अपनी एक बहन समझें। जो वाणी के मन्दिर का पुजारी है उसका व्यक्तित्व संसार की सम्पत्ति है। केवल आत्मतेज के बल पर संसार में जिया नहीं जा सकता। तुम्हारे गीतों ने तुम्हारे भावों की पुकार मेरे पास पहुँचा दी है। मैं आई भी तुम्हारी कुछ सेवा करने के लिए,

लेकिन यहाँ जो कुछ देखा उसकी मुझे कल्पना ही न थी। संसार कितना निष्ठुर है?

कुमार—संसार बहुत मधुर है, बहुत प्रेमपूर्ण है, बहुत स्नेह-हीन है।

डॉक्टर—(जो इंजेक्शन लगा रहा था) मुझे मरीज के अच्छे होने की आशा है।

[सब सरला के पास बैठते हैं]

[पटाक्षेप]

रूप-शिखा

पात्र-सूची

रूपमती
एक नृत्य-संगीत प्रवीणा राजपूत रमणी।

बाजबहादुर
मालवा का सुलतान।

आदमखान
सम्राट् अकबर का एक सेनापति।

वीरसिंह
बाजबहादुर की सेना का सेनापति।

विजयसिंह
आदमखान के आधीन मुगल सेना का एक सेनानायक।

पहला दृश्य

[स्थल—मालव-प्रदेश का सारंगपुर नामक कस्बा। तालाब के निकट एक मन्दिर। मन्दिर की सीढ़ियों के निकट बाजबहादुर विकल मन अस्त-व्यस्त पद विक्षेप कर रहा है। वीरसिंह का प्रवेश।]

वीरसिंह—(झुककर कोर्निश करने के पश्चात्) जहाँपनाह विश्राम का समय

बाजबहादुर—नहीं वीरसिंह बाजबहादुर की जिन्दगी में आराम शायद है नहीं। रानी दुर्गावती के हाथों शिकस्त पाने के बाद से मानो मैं दीवाना हो गया हूँ। एक औरत से हार गया। छिः कैसी शर्म की बात है। दुर्गावती की दोनों हाथों से तलवार घुमाती हुई, मूरत आँखों के आगे से हटती ही नहीं है।

वीरसिंह—हार या जीत मनुष्य की बहादुरी की कसौटी नहीं है। सफलता पाने के लिए पुरुषार्थ के साथ प्रारब्ध भी चाहिए। पुरुष वह है जो कर्म करता है, हार या जीत से दुखी या प्रसन्न नहीं होता। मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप इस हार की कसक को भूल जाइए।

बाजबहादुर—हाँ भूल ही तो जाना चाहता हूँ और इसीलिए ज्यादा शराब पीने लगा हूँ। रोज नई शराब और रोज नई नाचनी। शराब और हुस्न के नशे में मैं बेइज्जती के दर्द को, हरदम चुभते रहने वाले काँटे की कसक को भूल जाने की कोशिश कर रहा हूँ आज की महफिल का इन्तजाम किया तुमने ?

वीरसिंह—आपने सेवक को ऐसी कोई आज्ञा नहीं दी।

बाजबहादुर—तो क्या मुझे रोज हुक्म देना पड़ेगा। वीरसिंह, भूख रोज लगती है और रोज खाना खाया जाता है। मेरी हसरतें भी भूखी-प्यासी हैं उनके लिए भी—

वीरसिंह—नित्य ही दाना-पानी चाहिए। अच्छी बात है भविष्य में आपको आज्ञा देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आप निवास-स्थान पर तो चलें उसके

पश्चात्

बाजबहादुर—नहीं पहले आरामगाह में आँखों को आराम देने वाले खूबसूरत चाँद को पहुँचाओ उसके बाद मुझे बुलाना।

वीरसिंह—और तब तक श्रीमान्?

बाजबहादुर—तब तक हम तालाब की लहरों से दिल बहलाएँगे। ऊपर तक लबालब भरा हुआ झलझलाता तालाब मानो जवानी के नशे में सराबोर औरत की बड़ी-बड़ी आँखें। और तालाब के पीछे वे धानी साड़ी की तरह लहराते हुए खेत और उनके पीछे घने हरे जंगल—औरत के दिल की तरह खूबसूरत लेकिन राज से भरे हुए। चाँदनी में चमकती हुई मालवा की यह काली-काली जमीन—औरत की लटों की तरह काली। (अचानक चौंककर) वीरसिंह, तुम अभी तक यहीं खड़े हो?

वीरसिंह—क्षमा कीजिए, आपके आलाप में मुझे कविता का आनन्द आ रहा था। मैं अपना कर्तव्य भूल गया। अब जाता हूँ।

[वीरसिंह का प्रस्थान]

बाजबहादुर—बेचारा वीरसिंह, शेर की तरह बहादुर! मेरी ढाल बनकर जंग के मैदान में हमेशा साथ रहने वाला। मैं तो समझता था यह पत्थर जिरह चट्टान का टुकड़ा है, लेकिन आज पता चला कि इसे भी कविता में मजा आता है। इसकी पसलियों के पीछे एक धड़कने वाला दिल है।

[रूपमती का हाथ में पूजा-सामग्री लिए प्रवेश। दूसरे हाथ में दीपक है। बाजबहादुर पर एक नजर डालकर सीढ़ियाँ चढ़ती जाती है। प्रत्येक पदक्षेप ऐसा जान पड़ता है मानो नृत्य कर रही है। रूपमती मन्दिर में प्रवेश करके ओझल हो जाती है।]

बाजबहादुर—जिन्दगी के सूने आसमान में बादलों की काली घटाओं के बीच यह कौन बिजली की तरह कौंधी और चली गई। मोर के रंगीन पंखों की तरह रंगीन ओढ़नी में कुन्दन की तरह चमकने वाले जिस्म को सजाए ऐसी बेफ़िक्री से जा रही थी मानो दुनिया में उसके सिवा कोई है ही नहीं। एक-एक कदम इस तरह रख रही थी मानो नाच शुरू करने वाली है। दिल तो

मानो साथ ही रहा था।

[मन्दिर में रूपमती वीणा बजाती है और गाती भी है। बाजबहादुर मंत्र-मुग्ध की तरह सुनता है।]

नेपथ्य में—(गीत)।

क्यों दिल का आराम गँवाता ?
कोयल गाती कूक कर गाना
कलिका पर मधुकर दीवाना
गुन-गुन रस के गाने गाता।
क्यों दिल का आराम गँवाता।

[गाना शान्त होता है लेकिन वीणा बजती रहती है]

बाजबहादुर—'क्यों दिल का आराम गँवाता ?' मानो मुझसे ही पूछ रही है।

[गीत आगे बढ़ता है]

नेपथ्य में—(गीत)

झर-झर झरना बहता जाता
अपने दिल को कहता जाता
क्यों न हृदय तेरा बह जाता ?
क्यों दिल का आराम गँवाता ?

[गीत रुकता है किन्तु वीणा बजती ही रहती है]

बाजबहादुर—'क्यों न हृदय तेरा बह जाता ?' कहने की क्या बात मानो बाढ़ आ रही है। तूफान उठ रहा है।

[गीत आगे बढ़ता है]

नेपथ्य में—(गीत)

डाल-डाल पर कलियाँ झूलीं
झूम-झूमकर कलियाँ फूलीं
तू क्यों ममता नहीं जगाता ?
क्यों दिल का आराम गँवाता ?

[गीत रुकता है किन्तु वीणा बजती रहती है]

बाजबहादुर—बागा तो बाजबहादुर ने बनाई—लेकिन एक भी फूल ऐसा नहीं खिला जिसके ओठों पर हमेशा मुसकान रह सकी हो।

नेपथ्य में—(गीत)

जब तक जीना हँसकर जीना,
अन्त मृत्यु की मदिरा पीना,
जो जग में आता, वह जाता।
क्यों दिल का आराम गँवाता?

[गीत समाप्त होता है और नाचने से गुंजरित होने वाले पायलों के स्वर सुनाई देते हैं।]

बाजबहादुर—जिन्दगी के परदे के पीछे उम्मीद के पायल बज रहे हैं। तारीकी को चीरकर नई किरनें मेरे दिल में रोशनी करने को बढ़ती चली आ रही हैं। ऐसा रूप मेरी आँखों ने पहले नहीं देखा ऐसी मस्तानी वीणा की तान घुँघरुओं की ऐसी सुरीली आवाज पहले नहीं सुनी।

[नाच बन्द होता है]

बाजबहादुर—खामोश हो गए हैं ये स्वर—लेकिन मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गई हैं। ओ स्वरों की रानी तुम परदे के पीछे ही रहकर बजाती रहो अपने सुरों को और मैं उन्हें सुनता ही रहूँ। सारी जिन्दगी एक रात की तरह खतम हो जाए।

[रूपमती मन्दिर से बाहर निकलकर आती है। सीढ़ियाँ उतरती है। बाजबहादुर अकस्मात् उसके सामने आ खड़ा होता है। रूपमती चौंक पड़ती है। उसके हाथ से थाल छूट जाता है। वीणा भी गिर पड़ती है।]

बाजबहादुर—मैं मुसलमान हूँ और भेंट-पूजा की चीजें हैं नहीं तो

रूपमती—आप उठा देते ! साहब तो खूब हैं ! आप यहाँ से

बाजबहादुर— चले जाइए।' यही तो आप कहना चाहती हैं। किस्मत ! किसी ने तो इस कमबख्त से कहा होता 'आइए'। सभी कहते हैं 'जाइए'। तभी लूटना-चोरी करना मेरी आदत हो गई है। ऐ हुस्न के दरिया जरा बूँद भर

पानी भी मैं तुमसे नहीं पा सकूँगा।

रूपमती—मैं गरीब हूँ—क्या इसलिए आप ऐसा दुस्साहस कर रहे हैं? मैं कहती हूँ हटो रास्ता छोड़ो।

बाजबहादुर—मालवा का सुलतान बाजबहादुर रास्ता छोड़ना नहीं जानता। जिस बग़ीचे के जिस फूल पर मेरी नज़र पड़ी है उसे मेरे गले का हार बनना पड़ा है। तुम रास्ता छोड़ने का हुक्म किसके भरोसे पर देती हो?

[बाजबहादुर आगे बढ़ता है। रूपमती कमर से छोटी छुरी निकालती है। बाजबहादुर रुक जाता है।]

रूपमती—इसके भरोसे पर। गरीब राजपूतानियाँ भी अपनी इज्जत बचाना जानती हैं, सुलतान सलामत! यह कटार किसी भी अत्याचारी के कलेजे का खून पीने के लिए प्रस्तुत है और आवश्यकता पड़ने पर मेरे हृदय के रक्त में स्नान करने में भी संकोच नहीं करेगी। बोलो रास्ते से हटते हो या नहीं?

बाजबहादुर—मैं तुम्हारे रास्ते का रोड़ा नहीं काँटा नहीं फूल भी नहीं सिर्फ धूल बनकर पड़ा हुआ हूँ। तुम मेरी हस्ती को कुचलती हुई चली जाओ। (रूपमती के पैरों में सिर झुकाता है) मेरे सिर को ठुकराती हुई तुम जा सकती हो। मैं भूल गया हूँ कि मैं मालवे का सुलतान हूँ। मैं तो तुम्हारे दरवाजे पर खड़ा हुआ भिखारी हूँ। (उठकर) जाओ मैं रास्ता नहीं रोकूँगा। मैंने आज तक औरत को मर्द का खिलौना समझा है। आज तक किसी औरत की इज्जत-आबरू का ख्याल नहीं किया मैंने अपनी ख्वाहिश पर उन्हें बेरहमी से मसल डाला है, लेकिन आज तुमसे हार मानता हूँ। तुम जाओ।

[रूपमती छुरा को नीचे करती है। बाजबहादुर चला जाता है]

रूपमती—सुना था सुलतान अत्यन्त निर्दय है। उसने अनेक हिन्दू और मुसलमान कुमारियों के जीवन भ्रष्ट किए हैं। आज वह मेरे आगे से भाग क्यों गया? वह सुलतान है वह जुल्म करे तो उसे रोकने वाला कौन है? आज उसने अपनी शक्ति का प्रयोग क्यों नहीं किया? क्या मैं इतनी तुच्छ हूँ कि उसके हृदय में एक हल्की-सी प्यास जगाकर रह गई। वह पागल क्यों नहीं हो उठा। लेकिन—लेकिन मैं आज यह क्यों सोच रही हूँ। आह, आज मुझे क्या

हुआ है—जैसे पहली बार मैंने पुरुष को देखा है। चन्द्र को देखकर जैसे समुद्र में ज्वार उठता है उसी तरह आज मेरे हृदय में तूफान उठ रहा है। यह रूप छिपा एकान्त में जब जल रही थी उसकी ओर उड़ता हुआ एक शलभ आया—आया तो वापस क्यों चला गया?

[विचार-मग्न-सी बैठी रह जाती है, इस बीच बाजबहादुर फिर प्रवेश करता है।]

बाजबहादुर—आह! तुम अभी तक यहीं हो? मैं कहता हूँ, तुम चली जाओ! मेरी आँखों के आगे से चली जाओ। मैं इस हुस्न की झाँकी को बर्दाश्त नहीं कर सकता। तुम-जैसी पाक-दामन और मासूम लड़की को छू भी नहीं सकता। तुम राजपूत की लड़की हो न? रानी दुर्गावती भी तो राजपूत की बेटी है। मैं तुम्हारी इज्जत करना चाहता हूँ। तुम बहुत खूबसूरत हो और मुझे अपने ऊपर भरोसा नहीं है। मुझे गाली खाने का मौका न दो। तुम जाओ। जिन सीढ़ियों पर तुमने कदम रखे हैं उनकी इबादत करता हुआ मैं जिन्दगी के दिन पूरे कर दूँगा। तुम जाओ।

रूपमती—जाऊँ?

बाजबहादुर—हाँ जाओ!

[रूपमती जाती है]

बाजबहादुर—लो वह चली और मैंने नाम भी नहीं पूछा। सुनो तो ओ राजपूत का बेटी! ओ हुस्न की बिजली!

[रूपमती का प्रवेश]

रूपमती—कहिए सुलतान?

बाजबहादुर—तुम्हारा नाम क्या है?

रूपमती—मुझे रूपमती कहते हैं।

बाजबहादुर—तुम्हारा घर?

रूपमती—वह सामने जो झोंपड़ी नजर आ रही है। लेकिन राजमहलों के रहने वालों की झोंपड़ी पर नजर क्यों पड़ रही है?

बाजबहादुर—झोंपड़ी! काश ऐसी झोंपड़ी में मैं भी रह पाता!

[बाजबहादुर का प्रस्थान]

रूपमती—कैसी उलझन है ? वह गए तो जाएँ—मेरा मन क्यों उदास हो ? झोंपड़ी और महल का मेल हो भी जाए तब भी क्या हिन्दू और मुसल मान का मेल हो सकेगा।

[रूपमती का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—सारंगपुर के तालाब की मेड़। एक युवती मेड़ पर बैठी है उसके पास खाली घड़ा रखा है। चार युवतियाँ सिर पर खाली घड़े रखे हुए आती हैं।]

आने वाली युवतियों में से एक—क्यों री कंचन बैठी-बैठी किसकी राह देख रही है ?

कंचन—रूपमती की।

[तीन युवतियाँ चली जाती हैं]

आने वाली—तब तो तुझे जीवन भर राह देखनी पड़ेगी।

[आने वाली भी कंचन के पास बैठती है]

कंचन—यह क्या कहती है मालती !

मालती—सच ही तो कहती हूँ। मालवा का सुलतान उस पर लट्टू हो गया और उसे अपनी बेगम बना लिया। आखिर थी तो नाचने वाली ही—बेगम बनने में कौन उसकी इज्जत घटती थी।

कंचन—नाचना गाना तो कलाएँ हैं, उनका अभ्यास करने से क्या जात बदल जाती है। रूपमती है तो राजपूतानी !

मालती—है तो राजपूतानी—लेकिन राजपूतानियाँ नाच-गाकर पैसा नहीं

कमाती। रूपमती तो गाना-गाकर अपने माँ-बाप का पेट भरती रही है—और उसको भगवान् ने रूप का भण्डार दिया है, वह भी तो उसके धन्धे की पूँजी है।

कंचन—कैसी बातें करती है मालती! बचपन से हम रूपमती को जानती हैं। नाचने-गाने की प्रतिभा उसे प्रकृति से मिली है। रूप भी प्रकृति ने दिया है—लेकिन रूप का व्यापार करना तो उसने कभी नहीं चाहा। कितने मद वाले भौंरे इस फूल के चारों तरफ चक्कर लगाकर चले गए—लेकिन क्या किसी को उसकी एक पंखुरी को स्पर्श करने का साहस हुआ?

मालती—हाँ हाँ, तू हमेशा पहरेदारी करती थी न?

कंचन—पहरेदारी करती थी उसकी गैरत! सच पूछो तो वह माँ-बाप के सम्बीघर में पिंजरे में फँसे हुए पंछी की तरह व्याकुल और उदास रहती थी।

मालती—तब किसी के साथ क्यों नहीं गई?

कंचन—भागना क्या इज्जतदार नारी का काम है?

मालती—नहीं, शरीर बेचना इज्जत का काम है।

कंचन—रूपमती कुबेर का खजाना लेकर भी अपने तन का सौदा नहीं कर सकती।

मालती—लेकिन क्या तुझे नहीं मालूम कि रूपमती के पिता ने रूपमती के शरीर के तोल के बराबर सोना लेकर उसे मालवा के सुलतान की बेगम बनने की अनुमति दी है।

कंचन—तब तो रूपमती के पिता ने सोचा होगा कि रूपमती तौल-तौल में मोटी-मोटी हथिनी होती।

मालती—तब कोई पत्थरों के तोल में भी उसे न खरीदता। सौदा तो 'कनक छरी-सी कामिनी' का ही होता है।

कंचन—लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि रूपमती अचानक ऐसी पतिता कैसे हो गई! वह तो मुझसे कहती थी मेरा जी चाहता है कि मैं भी तलवार बाँधकर युद्ध करने जाऊँ। जो पुरुष ललचाई नजरों से मेरी तरफ देखते हैं उनकी आँखें निकाल लूँ।

मालती—लेकिन कंचन यह दिन बड़ा क्यामत है। क्या पता रूपमती के दिल ने ही उसके संयम के बांध को तोड़ डाला हो। कुछ भी हो रूपमती अपने गांव की शोभा थी। उसका चला जाना अच्छा नहीं हुआ।

कंचन—सच कहती हो मुझे तो ऐसी वेदना हो रही है जैसी मणि खो देने पर सांप को होती है।

मालती—तो तुम भी चली जाओ रूपमती के साथ ही। बाजबहादुर का अन्तःपुर तो किसी भी युवती का स्वागत करने को प्रस्तुत रहता है।

कंचन—मुझे मंजूर है—अगर तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो।

मालती—मुझ क्यों सारंगपुर की सारी युवतियों को ले चलो न ?

कंचन—लेकिन रूपमती को पाने के बाद क्या बाजबहादुर किसी और स्त्री की तरफ देखेगा। बाजबहादुर ने धन से रूपमती को मोल तो लिया है लेकिन देख लेना वह इसका बदला लेगी। वह उसे अपने संगीत के स्वरों पर इस प्रकार नचाएगी जिस प्रकार सँपेरा नाग को नचाता है।

[तीनों युवतियां सिर पर जल से भरे [illegible] घड़े रखे हुए प्रवेश करती हैं]

एक युवती—क्या यहीं बैठी रहोगी या पानी भरकर घर भी चलोगी।

[कंचन और मालती अपने घड़े उठाकर चलती हैं और पानी भरने जाती हैं—शेष तीनों युवतियां दूसरी तरफ चली जाती हैं।]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—मांडू के किले में रूपमती का शयनागार। बाजबहादुर पलंग पर बैठा हुआ है। रूपमती मदिरा का पात्र भरकर बैठी है।]

बाजबहादुर—(मद-पात्र ग्रहण करते हुए) लाओ रूपमती। मीत का प्याला पिला दो।

रूपमती—ऐसा क्यों कहते हैं आप ?

बाजबहादुर—जो नशा आदमी को अपने फ़र्ज़ की याद भुला दे वह मौत ही तो है रूपमती ! देखती तो हो हमारे चारों तरफ़ आग लगी हुई है लेकिन तुम्हारे साए में पड़े हुए बाजबहादुर को मानो उसकी लपटें छू नहीं पा रहीं। हम तूफ़ानी समुद्र में कमज़ोर-सी नाव पर बैठे हुए बहे जा रहे हैं। तुम्हारे रूप और शराब ने असलियत पर परदा डाल रखा है। रूपमती तुम राजपूतानी हो न ?

रूपमती—हाँ इस बात का मुझे सदा गर्व रहा है।

बाजबहादुर—राजपूत की बेटी अपने प्रेमी को निकम्मा नहीं बनाती तुमने मुझे क्यों बेकार कर दिया है। सदा ही प्रीत के प्याले पीते हुए तो जिन्दगी नहीं जी सकती। वह देखो खूँटी पर टँगी हुई तलवार में जंग लग गया है।

रूपमती—लग भी जाने दीजिए। तलवार चलाने के लिए वीरसिंह है और भी हजारों सैनिक हैं। वीरसिंह सच्चा राजपूत है वह अपने स्वामी से विश्वासघात नहीं कर सकता और उसके आधीन सैनिक उसके इशारे पर जान देने को सदा प्रस्तुत रहेंगे।

बाजबहादुर—तलवार से कायम की गई सल्तनत तभी तक टिक सकती है जब तक उसके मालिक के हाथों में तलवार है। तुम तो जानती हो हम पर दुश्मन ने

रूपमती—मैं कुछ नहीं जानना चाहती। मैं सिर्फ़ तुम्हें चाहती हूँ—शेष संसार को आँखों के सामने आने भी नहीं देना चाहती। आप राजमहल के रहने वाले हैं और मैं झोंपड़ी में रहती थी। आपका राजमहल अगर काल का थप्पड़ खाकर गिर पड़ेगा तो झोंपड़ी तो हमारा स्वागत करेगी ही। मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध राजमहल की स्वामिनी बनी तो आप मेरे प्रेम की खातिर झोंपड़ी में रहना स्वीकार करेंगे इसका मुझे भरोसा है। क्या एक झोंपड़ी भी—संसार हमारे लिए नहीं छोड़ेगा ? यह शराब नहीं मिलेगी तो क्या बावड़ियों का पानी भी न मिलेगा ? ये तरह-तरह के भोजन नहीं मिलेंगे तो क्या ज्वार की रोटियाँ भी नहीं मिलेंगी ? मदमाती चाँदनी रातें होंगी तुम होगे मैं हूँगी। शराब नहीं

होती तो क्या है वीणा में क्या उससे कम नशा है ?

बाजबहादुर—और तुम्हारे स्वर में क्या वीणा की झंकार से कम जादू है । छेड़ दो वीणा की तान के साथ अपने गान । दोनों में होड़ होने दो । तान और गान की लहरों में टक्कर होने से जो भँवर पैदा हो उसमें मेरी हस्ती की नाव को डूब जाने दो । छेड़ो गाना ।

रूपमती—(वीणा उठाकर लाती है और बजाती और गाती है)

गूँजे आज प्रलय की वाणी !

बाजबहादुर—यह क्या गा उठीं तुम ?

रूपमती—कभी-कभी सत्य दीवारों को तोड़कर प्रकट हो उठता है । कोई रहस्य प्राणों में बैठकर मेरे स्वरों को बदल गया है । (गाने लगती है)

गूँजे आज प्रलय की वाणी !

आँधी आए, बादल आए,
बिजली भीषण रूप दिखाए,
लहर लहर बन बरसे पानी
गूँजे आज प्रलय की वाणी ।
सूर्य छिपे चन्दा छिप जाए,
अन्धकार में जगत् समाए
बुझ जाएँ सारी दीवाली
गूँजे आज प्रलय की वाणी ।
युग-युग से जो गीत सुनाती
पर न कभी पूरा कर पाती
गा ले उसको—

[गीत समाप्त नहीं होता कि बीच में ही एक दासी आती है और कोर्निश करती है ।]

दासी—सरकार, सेनापति आए हैं ।

रूपमती—इतनी रात को !

बाजबहादुर—यही तो दौलत और ताकत का घमंड करने वाले उमराओं

सुलताना राजा-महाराजाओं और बादशाहों की जिन्दगी है बस ! (दासी से) भेज दो उन्हें ।

[दासी का प्रस्थान]

रूपमती—तो अब प्रीति की महफिल समाप्त होती है और राजनीति का अखाड़ा प्रारम्भ होता है ।

[वीणा को लिए हुए रूपमती प्रस्थान करती है]

बाजबहादुर—राजनीति के अखाड़े में हार खाकर मैं प्रीति की महफिल में आ बैठा था लेकिन राजनीति क्या मेरा पीछा छोड़ेगी । मैं देखता हूँ वह मेरी हस्ती को धूल में मिलाकर ही दम लेगी । अब सब-कुछ खत्म होने वाला है । मुझमें क्या नहीं था ? मेरी बहादुरी का सिक्का सारे हिन्दुस्तान में माना जाता था । अचानक दुर्गावती ने मेरी शोहरत के चाँद को बादलों से ढक दिया । उसके बाद रूपमती ने हुस्न की जंजीरों से मुझे कस लिया । यह ऐसी शिकस्त है जो कभी महसूस नहीं होती यह वह जहर है जो जान लेता हुआ जान नहीं पड़ता । मैं धीरे-धीरे मौत के मुँह में दाखिल हो रहा हूँ । अकबर बादशाह ने आदमखान को भेजकर मुझ पर चढ़ाई करवाई है । मेरी फौज उससे लोहा ले रही है और मैं शराब और हुस्न के दरिया में बह रहा हूँ ।

[वीरसिंह का प्रवेश]

वीरसिंह—(कोर्निश करके) सरकार आदमखान ने किले पर पूरे बल से आक्रमण कर दिया है और एक तरफ की दीवार टूट भी चुकी है ।

बाजबहादुर—दुश्मन ने रात में ही हमला बोल दिया है ।

वीरसिंह—जी हाँ रात में ही । अब किला हमारी रक्षा नहीं कर सकता ।

बाजबहादुर—जब किले की दीवार ने जवाब दे दिया है तब बचने का रास्ता ही क्या है ? अफसोस है कि हथियारों की झंकार में मजा लेने वाला बाजबहादुर औरत के पायल की रुनुन झुनुन में फँसा हुआ है । यह क्या हो रहा है ? मैं इस दुनिया में आँधी की तरह आया था और बुलबुले की तरह जा रहा हूँ । वीरसिंह यह मालवा देश दीवाना बना देने वाला है । यहाँ काले-काले

खेतों में अफीम पैदा होती है, यहाँ की हवा में अफीम है। यहाँ की आदमियों की साँसों में अफीम है। मुझे भी इन्होंने अफीमची बना दिया है। मेरी तलवार लाओ। रूपमती को बुलाओ। उस सफेद नागिन का फन मैं काट डालूँगा।

[नेपथ्य में तोप चलने की आवाज]

बाजबहादुर—सुनो वीरसिंह! अब दुश्मन दूर नहीं है। मैं रुक नहीं सकता। दुश्मनों से बदला लेने के लिए जिन्दा रहना है। मैं जाता हूँ—लेकिन जाते जाते इन धरती की हूरों को जिन्होंने सिपाही को अफीमची बना दिया है तलवार के घाट उतारे जाता हूँ। मैं पागल था कि एक के बाद एक भोली भाली कली को अपनी बाहों की आग में झोंकता गया। मैं किसी का गुलाम नहीं बना था लेकिन रूपमती ने मुझे दुनिया की सब चीजों से दूर करके अपने हुस्न के बादलों से ढक लिया। मैं अपने-आपको भूल गया। मैं जाता! लेकिन रूपमती भी अब जिन्दा नहीं रह सकती।

[तलवार को म्यान से निकालता हुआ प्रस्थान करता है।]

वीरसिंह—मूर्ख सुलतान! राजपूत बाला के सतीत्व का मोल कम नहीं है—चाहे वह नर्तकी ही क्यों न हो। रूपमती गरीब बाप की बेटी है तभी तो धन देकर सुलतान ने उसे खरीदकर बेगम बना लिया। लेकिन उसने रूप की ज्वाला में इस पतंगे को भून डाला। वह रूपमती की जान लेने को प्रस्तुत है लेकिन मैं उसे मरने नहीं दूँगा। जाऊँ उसे बचाऊँ।

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान—आसफखान के डेरे के बाहर। आसफखान और उसका एक साथी—जो राजपूत जान पड़ता है—दोनों डेरे के सामने इधर

रहे हैं मानो किसी की प्रतीक्षा में हों। समय—रात।]

आदमखान—इतनी आसानी से मांडू का किला हमारे हाथ आ जाएगा इसकी मुझे भी उम्मीद न थी विजयसिंह !

विजयसिंह—निश्चय ही यह एक आश्चर्य की बात है। बाजबहादुर कायर नहीं है न जाने क्यों वह अपने पुरुषार्थ को अपनी शक्ति को भूल बैठा है ?

आदमखान—सुना है रूपमती की खूबसूरती ने उसे मदहोश कर दिया है।

विजयसिंह—निस्संदेह, रूपमती के रूप-गुण की चर्चा सारे मालवा में है। वह न केवल अभिन्न सुन्दरी है बल्कि एक श्रेष्ठ गायिका एवं निपुण नर्तकी भी है।

आदमखान—बादशाह आलिया का भी हुक्म है कि मालवा को फतह करके रूपमती को उनके सामने हाजिर किया जाए।

विजयसिंह—(हंसी के साथ) सम्राट् साहित्य और कला के प्रेमी जो हैं। उनकी राज-सभा के एक रत्न तानसेन तो हैं ही रूपमती के पहुंच जाने से शोभा और भी बढ़ जाएगी लेकिन रूपमति को सम्राट् की राज-सभा की नर्तकी बना सकना संभव भी है इसमें मुझे सन्देह है।

आदमखान—बाजबहादुर और शाहंशाह अकबर दोनों में से एक को पसन्द करने को कहा जाए तो एक गाने वाली—औरत ही पसन्द का सौदा करने वाली—नाचने वाली—क्या बाजबहादुर को पसन्द करेगी ?

विजयसिंह—औरत—चाहे वह नाचने वाली हो—दिल का सौदा एक बार करती है।

आदमखान—एक बार करती है—रूपमती की जिन्दगी में वह 'एक बार' अभी नहीं आया है।

विजयसिंह—तब वह बाजबहादुर के हरम में किसलिए और किस तरह आ गई ?

आदमखान—उसके बाजदेन का लालच और उसकी अपनी दोनों ने बे रहमी से उसे ला पटका मांडू के राजमहल में।

विजयसिंह—ऐसा सोचने का कारण ?

आदमखान—जो प्यार करता है वह अपने प्रेमी को अपना पालतू पंछी नहीं बनाता। वह उसे रात-दिन शराब और संगीत के नशे में मस्त रखकर उसके फर्जों की तरफ से बे-खबर नहीं कर देता। वह उसकी जिन्दगी की ताकत बनकर आता है—बेहोशी नादानी और कमजोरी बनकर नहीं आता।

विजयसिंह—तो आप समझते हैं कि रूपमती बाजबहादुर की मित्र नहीं शत्रु है?

आदमखान—बेशक दुश्मन है। दोस्त होती तो वह उसके साथ सिपाही की पोशाक में—घोड़े पर बैठकर तलवार चलाती हुई मैदाने जंग में कहर बनकर तड़पती हुई नजर आती—न कि रुनुन-झुनुन की धुन पर उस जहरीले साँप को नचाने में ही मशगूल रहती।

विजयसिंह—तो सम्राट् अकबर के दरबार में जाना वह पसन्द करेगी इसका भी क्या निश्चय?

आदमखान—इसमें मुझे जरा भी शक नहीं है। वह अच्छे मानी में अपने फन की इबादत करने वाली है। जिस्मानी ख्वाहिशों से कहीं ऊपर। ऐसे शख्स के लिए हिन्दुस्तान में सबसे अच्छी जगह है—बादशाह अकबर का दरबार जो तानसेन की तान से गूँजता रहता है। बादशाह अपने दरबार में हर फन की माहिर शख्सियत को इज्जत देना चाहते हैं।

विजयसिंह—और अपने अन्तःपुर में भारत भर की प्रत्येक अनिंद्य सौन्दर्यमयी युवती को अपने विलास का साधन बनाना चाहते हैं।

आदमखान—खामोश तुम बादशाह आलिया की तौहीन करते हो!

विजयसिंह—सिपहसालार आदमखान! राजपूत सच बोलने में यम से भी भयभीत नहीं होता। इसमें बादशाह की तौहीन का प्रश्न नहीं है—यह एक सचाई है। क्या सम्राट ने अपने रावमहल में अनेक राजघरानों की राजकुमारियों को बंदी बनाकर नहीं रखा? मैं उन्हें देवता नहीं समझता—आदमी भी नहीं।

आदमखान—क्या समझते हो?

विजयसिंह—जो समझता हूँ उसे जबान पर नहीं लाना चाहता।

आजमखान—क्योंकि जानते हो कि आजमखान की तलवार ज़बान काट लेगी।

विजयसिंह—जब तक हाथ में तलवार है कोई मेरी ज़बान नहीं काट सकता। एक क्या हज़ार आजमखान मेरी छाया को भी नहीं छू सकते।

आजमखान—बदतमीज़ राजपूत तुझे मौत का भी डर नहीं है।

[विजयसिंह तलवार निकालता है]

विजयसिंह—ज़बान बन्द करो और तलवार निकालो।

[इसी समय एक मुसलमान सैनिक आकर आजमखान को कोर्निश करता है। फिर तलवार निकालकर खड़ा होता है।]

सैनिक—तलवार म्यान में कीजिए।

विजयसिंह—राजपूत की तलवार एक बार म्यान के बाहर आकर रक्त-गंगा में स्नान किए बिना म्यान में नहीं जाती।

आजमखान—(तलवार निकालता हुआ) विजयसिंह मेरी तलवार को तुम्हारी तलवार की चुनौती मंज़ूर है लेकिन यह जगह तलवारों का करतब दिखाने के लिए मौजूं नहीं है। तुम राजपूत हो—और राजपूत नमक का कर्ज़ अदा करता है। दुश्मन के भी पीठ में छुरी नहीं घुमाता। सामने आकर छाती पर वार करता है—यह जानता है। यहाँ तुम बादशाह आलिमा के साथी की हैसियत से आए हो—यानी वे स्वामी का नमक खाया है। उसे अदा करना है। तुम आपस में लड़कर आप खुदकुशी तो करोगे ही लेकिन दुश्मन को भी फ़ायदा पहुँचाओगे।

[विजयसिंह तलवार म्यान में करता है]

विजयसिंह—जीवन में प्रथम बार यह तलवार बिना खून पिए अपने म्यान में जा रही है। इसलिए यह अपने म्यान में बेचैन रोएगी।

आजमखान—इसकी बेचैनी दूर करने के बहुत मौके मिलेंगे विजयसिंह! (आगत सैनिक से) तुम क्या खबर लाए हो?

सैनिक—राजबहादुर हाथ न आ सका—लेकिन रूपमती मांडू के महल में ही है।

आदमखान—रूपमती माँडू के महल में ही है। सो अब चिड़िया उड़ने न पाए। इसका इन्तज़ाम रखो। साथ ही यह भी ख़याल रखो कि उसे कोई तकलीफ़ न हो। रूपमती को गिरफ़्तार करने के माने हैं बाज़बहादुर को गिरफ़्तार कर लेना।

विजयसिंह—सो कैसे?

आदमखान—मणि वाला साँप मणि की तलाश करता हुआ उसके पास आ ही पहुँचता है। (सैनिक से) जाओ रूपमती के आराम का इन्तज़ाम करो और उनसे कहो कि आदमखान उनसे मिलना चाहता है।

सैनिक—जो हुक्म!

[सलाम करके प्रस्थान]

आदमखान—(विजयसिंह से) अब हम भी एक-दूसरे से रुख़सत लें। मुझे देखना है रूपमती में कितना दम है—कितनी राजपूती है और कितनी इन्सानियत है।

विजयसिंह—हैं! तो आप ज़हरीली नागिन के बिल में हाथ डालना चाहते हैं।

आदमखान—बेशक! आदमखान पर साँपिन के काटे का ज़हर नहीं चढ़ता।

[कहता हुआ चला जाता है]

विजयसिंह—अभी तक साँपिन से पाला ही नहीं पड़ा है, सिपहसालार। इतने दिन बाज़बहादुर की चारदीवारी में बन्द रहकर भी रूपमती पालतू साँपिन नहीं बनी है जिसके ज़हर के दाँत टूट गए हों। यह विलासी कुत्ता—क्या करेगा—इस पर निगाह रखनी ही पड़ेगी।

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[मांडू के महल में रूपमती का कक्ष। कक्ष की सजावट सुरुचि और कला-पूर्ण है। संगीत एवं नृत्य से सम्बन्ध रखने वाले प्रसाधन भी रखे हुए हैं—किन्तु हैं कुछ तितर बितर से। समय—संध्या। रूपमती उदास अवस्था में शय्या पर पड़ी हुई है। वीरसिंह पास ही बैठा है।]

वीरसिंह—बाज बड़ा दुष्ट!

रूपमती—दुष्ट! कितना कठोर शब्द है यह वीरसिंह! उनके प्रति ऐसे शब्द का प्रयोग न करो! इस तीर की नोक मेरे कलेजे में चुभती है।

वीरसिंह—आपके कलेजे में! क्या कह रही हैं आप?

रूपमती—ठीक ही तो कह रही हूँ।

वीरसिंह—उसने आपके प्राण लेने का प्रयत्न किया था। वह आपको प्यार नहीं करता।

रूपमती—उनकी तलवार का वार मुसकुराकर कह रहा है वह मुझे सचमुच प्यार करते थे—प्राणपण से चाहते थे। आज भी चाहते हैं। जिन्होंने मेरे लिए राज्य-वैभव गँवाया—सर्वस्व नाश कराया किसके लिए, एक गायिका के लिए। एक नर्तकी के लिए।

वीरसिंह—केवल गायिका—केवल नर्तकी।

रूपमती—नहीं तो क्या क्षत्रिय बाला! तुम क्षत्रिय हो और इसीलिए तुम्हारी नजर मेरे अभिजात्य पर जाती है—अर्थात् तुम सोचते हो कि रूपमती ने क्षत्रिय-कुल में जन्म लिया है—किन्तु वीरसिंह—केवल किसी कुल में जन्म ले लेने से ही उस कुल के सम्पूर्ण गौरव और उत्तरदायित्व में उसका भाग नहीं हो जाता। मुझे भगवान् ने रूप दिया—शरीर में स्फूर्ति दी संगीत के प्रति रुचि प्रदान की—मेरे माता-पिता ने मेरी इस प्रकृति-प्रदत्त प्रतिभा को परखा उसे अध्ययन और अभ्यास की खराद पर चढ़ाकर साफ किया और बाजार में बेच दिया। भरपूर कीमत पाई।

वीरसिंह—आपके पिताजी ने क्षत्रियोचित कार्य नहीं किया।

रूपमती—क्षत्रियोचित चाहे न किया हो—मनुष्योचित तो किया ही। मैं नाचती थी—मैं गाती थी। मैं संसार की चर्चा का विषय बन गया था। जिन्हें अपने ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व पर अभिमान था उनकी आँखों में उपेक्षा-भाव देखना एवं घृणा के अक्षर मैंने पढ़े हैं। मैं कला के लिए अपने क्षत्रियत्व को तिलांजलि देने को तैयार थी। मैं कला के लिए जीना चाहती थी—और कला के लिए ही मरना।

वीरसिंह—और कला के लिए ही तुमने बाजबहादुर को आत्मसमर्पण किया।

रूपमती—मेरे लिए जीवन से बड़ी वस्तु है कला और कला से भी बड़ी वस्तु है प्रेम। प्रेम पर मैं कला को भी न्योछावर करने को प्रस्तुत थी और हूँ।

वीरसिंह—वह प्रेम आपने बाजबहादुर में देखा।

रूपमती—हाँ देखा! प्रथम दर्शन में जिस तरह सीता ने राम को शकुन्तला ने दुष्यन्त को अपना हृदय समर्पित कर दिया था उसी तरह मैंने भी बाजबहादुर को कर दिया।

वीरसिंह—वह मुसलमान है यह भी

रूपमती—(बात काटकर) यह भी मैं जान गई थी—किन्तु प्रेम के संसार में जाति और धर्म के दायरे नहीं हैं। वहाँ मनुष्य जाति एक है। हम दोनों इन्सान थे हमने अपने प्राण एक कर लिए। न वह मुसलमान रहा न मैं हिन्दू। मैंने अपना जीवन उनके चरणों पर चढ़ा दिया। अब वह मेरे जीवन को निश्शेष करना चाहते थे तो उनको इसका अधिकार था।

वीरसिंह—मैं एक प्रश्न पूछूँ?

रूपमती—पूछो।

वीरसिंह—आप बाजबहादुर को प्यार करती थीं तो उससे उनकी वीरता क्यों छीन ली—क्यों उसे अपने रूप-जाल का बन्दी बना लिया?

रूपमती—इसलिए कि मुझे उन पर प्रेम के साथ क्रोध भी था। उन्होंने मेरे प्रेम को समझा नहीं। वे अपना नवाबपन धन-दौलत—वैभव-विलास लेकर मेरी झोंपड़ी में पहुँचे और मुझे खरीद लाए। यही क्या प्रेम करने का तरीका है। उन्होंने धन से मेरा शरीर खरीदा और मेरे प्रेम ने उनसे बदला लिया,

मैं उन्हें प्यार भी करती हूँ—उनसे घृणा भी करती हूँ। और प्यार करती हूँ इसलिए घृणा करती हूँ। बाजबहादुर ने समझा कि मैं उनसे बदला ले रही हूँ। उन्हें मुझ पर क्रोध आया और क्रोध इसलिए आया कि वह मुझे प्यार करते हैं।

[आदमखान का प्रवेश। साथ में दो सैनिक भी हैं]

आदमखान—किधर है रूपमती ?

वीरसिंह—(तलवार तानता हुआ) यहीं है आदम !

[आदमखान भी तलवार तानता है]

रूपमती—शान्त वीरसिंह ! शान्त आदमखान ! रूपमती आ रही है। उसके लिए रक्त-पात अनावश्यक है।

आदमखान—कहाँ जा रही हो रूपमती ! तुमको तो दिल्ली का दरबार याद कर रहा है।

रूपमती—इसीलिए तो मैं अपनी आग में स्वयं जलकर भस्म हो जाना चाहती हूँ। जलने और जलाने का खेल मैंने एक बार खेल लिया—एक आदमी के साथ खेल लिया। इस खेल को मैं पेशा नहीं बनाना चाहती।

आदमखान—लेकिन शाहंशाह अकबर कला के पारखी हैं—उन्होंने आपकी शोहरत सुनी है और वह चाहते हैं कि तानसेन की तरह आप भी दिल्ली के दरबार में कला को पेश करें।

रूपमती—रूपमती और तानसेन में अन्तर है—आदमखान।

आदमखान—क्या ?

रूपमती—यही कि वह पुरुष है और मैं नारी !

आदमखान—कला की दुनिया में मर्द और औरत का फर्क नहीं।

रूपमती—नहीं होना चाहिए—लेकिन है। इन्सान उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाता जहाँ स्त्री पुरुष का अन्तर समाप्त हो जाता है। सम्राट् पुरुष है—सौन्दर्य के प्रति उनकी आसक्ति है। मैं जान-बूझकर तो जाल में नहीं फँस सकती।

आदमखान—लेकिन मुझे तो सम्राट् की आज्ञा माननी है।

वीरसिंह—मेरे जीते जी आप इनको दिल्ली नहीं ले जा सकेंगे ।

आदमखान—मैं इनकी मर्जी के खिलाफ तो इन्हें नहीं ले जाऊँगा । आदम खान इन्सान है—वह रूपमती और बाजबहादुर के जज़्बात से खिलवाड़ नहीं करेगा और सम्राट् अकबर तो इन्सान से भी ऊपर फरिश्ता हैं । वह दुश्मन की भी कद्र करते हैं । वह बाजबहादुर को जिन्दा रखना चाहते हैं—माँडू के नवाब की हैसियत से उसकी इज्जत करना चाहते हैं । वह कहीं भी हों उन्हें खोज लाना होगा ।

रूपमती—क्या कहा—आप उन्हें खोजेंगे ।

आदमखान—बेशक उन्हें खोजकर आपका मान आपके हवाले कर दिया जाएगा ।

रूपमती—तब रूपमती भी जिन्दा रहेगी । जिस आदमी ने मेरे कलेजे में छुरी भोंकी है मैं उसके [illegible] माफ करूँगी । मैं जिऊँगी । वीरसिंह, मैं जिऊँगी । आदमखान मुझे बचाओ—मैं जिऊँगी ।

आदमखान—आप जरूर जिएँगी । मुझे तो पता ही नहीं था कि तुम घायल हो नहीं तो हकीम को साथ ही लाता । मगर अब इन्तजाम हो जाएगा । वीरसिंह—आप इन्हें दूसरे कमरे में आराम से लिटाइए—मैं इनके इलाज का इन्तजाम करता हूँ ।

[सैनिकों सहित जाता है]

वीरसिंह—(रूपमती से) क्या आपने आदमखान का भरोसा कर लिया ?

रूपमती—रूपमती चोर के घर तक जाएगी ।

वीरसिंह—और लुट भी गई तो ।

रूपमती—रूपमती अग्नि-बाला है ।

वीरसिंह—हाँ कभी-कभी तुममें आग-तेज भी जागता है । मुझे यह सुन-कर सन्तोष हुआ । फिर भी तुम अबला हो—घायल हो और यह यवन-समुदाय खूँखार भेड़ियों से कम नहीं है । मुझे चिन्ता होती है ।

रूपमती—तुमको भी मेरी चिन्ता होती है । क्यों ?

वीरसिंह—नदी में डूबने वाले अपरिचित के लिए भी सहानुभूति आप

पड़ती है, रूपमती !

रूपमती—अपरिचित के लिए। तब ठीक है। तब तुम मुझे सहारा दे सकते हो। मुझे ले चलो दूसरे कमरे में।

[वीरसिंह सहारा देकर रूपमती को ले जाता है]

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[स्थान—मांडूगढ़ से कुछ दूर आदमखान की छावनी के निकट मार्ग। रास्ते पर कोई चल-फिर नहीं रहा है। समय—सन्ध्या। आसमान में कुछ-कुछ लाली है। एक तरफ से विजयसिंह आता है दूसरी तरफ से वीरसिंह। दोनों एक-दूसरे को घूरकर देखते हैं।]

वीरसिंह—इस तरह क्या देख रहे हो ?

विजयसिंह—मैं तो तुम्हें पहचानने का यत्न कर रहा हूँ लेकिन तुम मुझे क्यों घूर रहे हो ?

वीरसिंह—मैं भी तुम्हें पहचानना चाहता हूँ।

विजयसिंह—तब पहचाना मुझे !

वीरसिंह—तुमने मुझे पहचाना ?

विजयसिंह—कदाचित् दोनों ने दोनों को नहीं पहचाना।

वीरसिंह—लेकिन तुम्हारी पोशाक से जान पड़ता है कि तुम मुगल सेना के कोई अधिकारी हो।

विजयसिंह—और तुम मांडू की सेना के कोई ऊँचे अधिकारी जान पड़ते हो।

वीरसिंह—ठीक ! मैं सेनापति हूँ।

विजयसिंह—हूँ !

वीरसिंह—हूँ क्या ?

विजयसिंह—यही कि बाजबहादुर है मुसलमान और उसका सेनापति है
दू ।

वीरसिंह—हूँ ।

विजयसिंह—हूँ क्या ?

वीरसिंह—यही कि दिल्ली का सम्राट् है मुसलमान और उसके अनेक
नी सेनापति और अधिकांश सेना है हिन्दू ।

विजयसिंह—क्षत्रिय !

वीरसिंह—स्वाधीनता और अपनी आन के लिए प्राण देने वाले ।

विजयसिंह—अपने देश को अपने हाथों से जंजीरों में कसने वाले ।

वीरसिंह—हूँ ।

विजयसिंह—फिर हूँ ।

वीरसिंह—हूँ ।

विजयसिंह—यह हूँ—बहुत भयंकर है ।

वीरसिंह—हूँ ।

विजयसिंह—इस हूँ का घूंघट खोलना पड़ेगा ।

वीरसिंह—घूंघट खोलने का रिश्ता होगा तो घूंघट खुलेगा

विजयसिंह—तो रिश्ता आज ही हो जाए ।

वीरसिंह—देखो तुम राजपूत हो ।

विजयसिंह—क्यों नहीं ?

वीरसिंह—राजपूत धोखा नहीं देता ।

विजयसिंह—अगर वह मनुष्य है तो ।

वीरसिंह—तो तुम मनुष्य हो ?

विजयसिंह—मनुष्य बनना चाहता हूँ ।

वीरसिंह—कैसे ?

विजयसिंह—अपनी इच्छा का स्वामी बनकर ।

वीरसिंह—हूँ ।

विजयसिंह—हूँ—अब इस हूँ का अर्थ बतलाइए ।

अमरसिंह—महाराणा ! छोटे से बूँदी दुर्ग को विजय करने के लिए इतनी बड़ी प्रतिज्ञा करने की क्या आवश्यकता है ? बूँदी को उसकी धृष्टता के लिए दण्ड तो दिया ही जाएगा लेकिन हाड़ा लोग कितने वीर हैं, पीढ़ियों का इतिहास उनके प्राणों को उत्तेजित करता रहता है, युद्ध करने में यम से भी वे नहीं डरते। वे यद्यपि संख्या में कम हैं किन्तु अपने पहाड़ी प्रदेश में खूब सुरक्षित हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अन्तिम विजय हमारी होगी, किन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इसमें कितने दिन लग जाएँगे। इसलिए ऐसी भीषण प्रतिज्ञा आप न करें। सम्पूर्ण मेवाड़ आपके इशारे पर मरने-जीने के लिए प्रस्तुत है। आपके प्राणों का मूल्य उसे स्वर्ण-सिंहासन से भी अधिक है। कुबेर के धन से भी ज्यादा है। आपकी इस प्रतिज्ञा की बात सुनकर सब जगह अशान्ति के बादल छा जाएँगे और दो राजपूत वंशों में जो भयंकर वैमनस्य की ज्वाला जल उठेगी वह बुझाए न बुझेगी और उसका लाभ उठाएँगे विदेशी लोग भारतीय सभ्यता के शत्रु। इसलिए आपसे मेरा नम्र निवेदन है कि आप मेवाड़ पर दया करके, गहलोत-वंश पर तरस खाकर, राजपूत जाति के हित-साधन के लिए और भारतीय स्वतन्त्रता की मंगल-कामना के लिए, अपनी इस कठोर प्रतिज्ञा को वापस ले लें।

महाराणा—आप यह क्या कहते हैं, सेनापति, क्या कभी आपने सुना है कि सूर्यवंश में पैदा होने वाले पुरुष ने अपनी प्रतिज्ञा को वापस लिया है ? महाराजा दशरथ का उदाहरण हम लोगों के सामने है 'प्राण जाएँ, पर वचन न जाई' यह हमारे जीवन का मूल मन्त्र है। जो तीर तरकस से निकलकर, कमान पर चढ़कर छूट गया उसे बीच से ही नहीं लौटाया जा सकता। मेरी प्रतिज्ञा कठिनाई से पूरी होगी यह मैं जानता हूँ और इस बात की हाल के युद्ध में पुष्टि भी हो चुकी है कि हाड़ा जाति वीरता में हम लोगों की अपेक्षा किसी प्रकार हीन नहीं है फिर भी महाराणा लाखा की प्रतिज्ञा वास्तव में प्रतिज्ञा है वह पूर्ण होनी चाहिए।

[नेपथ्य में गान]

तोड़ मोतियों की मत माला।
ये सागर से रत्न निकाले
युग-युग से हैं गए सँभाले।
इनसे दुनिया में उजियाला।
तोड़ मोतियों की मत माला।
ये पानी में छेद कराकर
एक हुए हैं हृदय मिलाकर,
इनमें व्यर्थ भेद क्यों डाला?
तोड़ मोतियों की मत माला।
माँ का मान इसी माला से।
बच रे हृदय द्वेष-ज्वाला से।
कर ले पान प्रेम का प्याला।
तोड़ मोतियों की मत माला।
इनमें कोई नहीं बड़ा है।
विधि ने इनको स्वयं गढ़ा है।
तू क्यों बनता है मतवाला?
तोड़ मोतियों की मत माला।

[गाते-गाते चारणी का प्रवेश]

महाराणा—तुम आ रही थीं चारणी? तुम सम्पूर्ण राजस्थान को एकता की शृंखला में बाँधकर देश की स्वाधीनता के लिए युद्ध करने का आदेश दे रही थीं किन्तु मैं तो उस शृंखला को तोड़ने जा रहा हूँ। दो पास बसी जातियों में आपसी दुश्मनी पैदा करने जा रहा हूँ।

चारणी—यह आप क्या कहते हैं महाराणा? अपनी विवेकशीलता पर सबको विश्वास है। जिस दिन सेनापति अभयसिंह बूँदी के महाराव के पास मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करने का संदेश लेकर पहुँचे थे उसी दिन मैंने उन्हें सचेत किया था। उसके बाद जब मेवाड़ी सेना पराजित होकर लौट आई तो मैंने समझ लिया कि मेवाड़ और बूँदी दोनों ही देशों पर विपत्ति के

बादल मँडरा रहे हैं। आज भी मैं आपसे अन्तिम अनुरोध करने आई हूँ कि महाराणा समय के फेर से यद्यपि आज हाड़ा शक्ति और साधनों में मेवाड़ के सम्मुख राज्य से छोटे हैं। फिर भी वे वीर हैं। मेवाड़ को उसके विपत्ति के दिनों में सहायता देते रहे हैं। यदि उनसे कोई धृष्टता बन पड़ी हो तो महाराणा उसे भूल जाएँ और राजपूत शक्तियों में स्नेह का सम्बन्ध बना रहने दें।

महाराणा—चारणी ! तुम बहुत देर से आईं।

अभयसिंह—चारणी ! महाराणा ने प्रतिज्ञा की है कि जब तक बूँदी के गढ़ को जीत न लेंगे वह अन्न-जल ग्रहण न करेंगे।

चारणी—दुर्भाग्य ! (कुछ सोचकर) महाराणा मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। देश का कोई भी शुभचिन्तक इस विद्वेष की आग को फैलने देना पसन्द नहीं कर सकता।

अभयसिंह—किन्तु ! महाराणा की प्रतिज्ञा तो पूरी होनी ही चाहिए।

चारणी—उसका एक ही उपाय है। वह यह कि यहीं पर एक मिट्टी का बूँदी का नकली दुर्ग बनाया जाए। महाराणा उसका विध्वंस करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लें—महाराणा क्या आपको मेरा प्रस्ताव स्वीकार है ?

महाराणा—अच्छा अभी तो मैं नकली दुर्ग बनवाकर उसका विध्वंस करके अपने व्रत का पालन करूँगा। किन्तु हाड़ाओं को उनकी उद्दण्डता का दण्ड दिए बिना मेरे मन को सन्तोष न होगा, सेनापति ! नकली दुर्ग बनवाने का प्रबन्ध करो।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[चित्तौड़ के निकट एक मैदानी प्रदेश में नकली दुर्ग का मुख्य दरवाजा।

महाराणा लाखा और सेनापति अभयसिंह का प्रवेश ।]

अभयसिंह—आपने दुर्ग का निरीक्षण कर लिया । ठीक बन गया है न ?

महाराणा—क्यों न बनता ! निस्सन्देह यह ठीक बूँदी-दुर्ग की हू-बहू नकल है । अच्छा अब इस पर चढ़ाई करने का खेल खेला जाए । इस मिट्टी के दुर्ग को मिट्टी में मिलाने से मेरी आत्मा को सन्तोष तो नहीं होगा, लेकिन अपमान की वेदना में, गर्व की तरंग में, प्रतिहिंसा के आवेश में, जो विवेक-हीन प्रतिज्ञा मैंने कर डाली थी उससे छुटकारा तो मिल ही जाएगा । उसके बाद फिर ठंडे दिमाग से सोचना होगा कि बूँदी को मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करने के लिए किस तरह बाध्य किया जाए । आज तक ऐसा नहीं हुआ कि मेवाड़ के महाराणाओं की मनोकामनाएँ पूरी हुए बिना रह गई हों ।

अभयसिंह—निश्चय ही महाराज ! शीघ्र ही बूँदी के पठारों पर सीसौदिया का सिंहनाद होगा । अच्छा अब हम लोग आज के रण की तैयारी करें ।

महाराणा—किन्तु यह रण होगा किससे ? इस दुर्ग में कोई तो हमारा पथ-प्रतिरोध करने वाला होना चाहिए ।

अभयसिंह—हाँ, खेल में भी कुछ तो वास्तविकता आनी चाहिए । मैंने सोचा है दुर्ग के भीतर अपने ही कुछ सैनिक रख दिए जाएँगे जो बन्दूकों से हम लोगों पर धूलि बार करेंगे । कुछ घण्टों ऐसा ही खेल होगा और फिर यह मिट्टी का दुर्ग मिट्टी में मिला दिया जाएगा । अच्छा अब हम चलें ।

[दोनों का प्रस्थान और वीरसिंह का कुछ साथियों के साथ प्रवेश]

वीरसिंह—मेरे बहादुर साथियो, तुम देख रहे हो कि हमारे सामने यह कौन-सी इमारत बनाई गई है ?

पहला साथी—हाँ, सरदार यह हमारी जन्मभूमि बूँदी का दुर्ग है ।

वीरसिंह—और तुम जानते हो कि महाराणा आज इस गढ़ को जीतकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं । किन्तु क्या हम लोग अपनी जन्मभूमि का अपमान होने देंगे ? यह हमारे वंश के मान का मन्दिर है । क्या हम इसे मिट्टी में मिलाने देंगे ?

दूसरा साथी—किन्तु यह तो नकली बूँदी है ।

वीरसिंह—धिक्कार है तुम्हें ? नकली बूँदी भी हमें प्राणों से अधिक प्रिय है। महाराणा ने सोचा होगा यहाँ से बूँदी साठ कोस दूर है। बूँदी के राव को उनके इस अपमान का पता भी नहीं लग पाएगा। सीसौदिया सैनिक खिलौने की तरह इस मिट्टी के गढ़ को मिट्टी में मिला देंगे। किन्तु जिस जगह एक भी हाड़ा है वहाँ बूँदी का अपमान आसानी से नहीं किया जा सकता। आज महाराणा आश्चर्य के साथ देखेंगे कि यह खेल केवल खेल ही नहीं रहेगा। यहाँ की चप्पा चप्पा भूमि सीसौदिया और हाड़ाओं के खून से लाल हो जाएगी।

तीसरा साथी—लेकिन सरदार हम लोग महाराणा के नौकर हैं। क्या महाराणा के विरुद्ध तलवार उठाना हमारे लिए उचित है ? हमारा हाड़-मांस महाराणा के नमक से बना है। हमें उनकी इच्छा में व्याघात क्यों पहुँचाना चाहिए।

वीरसिंह—और जिस जन्मभूमि की धूल में खेलकर हम बड़े हुए हैं उसका अपमान भी कैसे सहन किया जा सकता है। हम महाराणा के नौकर हैं तो क्या हमने अपनी आत्मा भी उनके बेच दी है ? जब कभी मेवाड़ की स्वतन्त्रता पर आक्रमण हुआ है हमारी तलवार ने उनके नमक का बदला दिया है। और जब तक इन हाथों में तलवार पकड़ने की शक्ति रहेगी वह मेवाड़ की मान-रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहेगी। लेकिन जब मेवाड़ और बूँदी के मान का प्रश्न आएगा हम चुपचाप मेवाड़ की दी हुई तलवारें महाराणा के चरणों पर रखकर विदा ले लेंगे और बूँदी की ओर से अपने प्राणों की बलि देंगे। आज ऐसा ही अवसर आ गया है।

पहला साथी—निश्चय ही जहाँ पर बूँदी है वहाँ पर हाड़ा है और जहाँ पर हाड़ा है वहाँ पर बूँदी है। कोई नकली बूँदी का भी अपमान नहीं कर सकता। जन्मभूमि हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है। हाड़ावंश फौलाद से बना है। आज महाराणा को इन मिट्टी की दीवारों का सामना नहीं करना पड़ेगा बल्कि हाड़ाओं की वज्र-देह का सामना करना पड़ेगा।

वीरसिंह—निश्चय ही। हम लोग संख्या में बहुत थोड़े हैं और हमारे पास मुकाबला करने के लिए उपयुक्त साधन भी नहीं हैं। हमारे पास केवल अपनी

प्राण हैं और उन प्राणों को जन्मभूमि की मान-रक्षा के लिए चढ़ा देने की अदम्य चाह है। संसार देखेगा कि हम भूमि की सन्तानें अपने प्राणों में कितनी आग लिए हुए हैं। हम बुझते हुए दीपक की तरह भभककर अन्धकार में मिल जाएँगे। हम बिजली की तरह कड़ककर, चमककर, आकाश का हृदय चीरते हुए पृथ्वी के अन्तस्तल में अपनी स्मृति की दरार को छोड़कर अन्तर्धान हो जाएँगे। अच्छा! अब अपनी जन्मभूमि को प्रणाम करो।

[सब दुर्ग के द्वार पर मस्तक झुकाते हैं]

वीरसिंह—मेरे वीरों! तुम भूमि-कुल के उंजारे हो। अपने वंश की आभा को क्षीण न होने देना। प्रतिज्ञा करो कि प्राणों के रहते हम इस नकली दुर्ग पर मेवाड़ की राज्य-पताका को स्थापित न होने देंगे।

सब लोग—हम प्रतिज्ञा करते हैं कि प्राणों के रहते इस दुर्ग पर मेवाड़ का ध्वजा न फहराने देंगे।

वीरसिंह—मुझे आप लोगों पर अभिमान है और बूँदी आप-जैसे पुत्रों को पाकर फूली नहीं समाती। यह नकली बूँदी भी हमारे भावी बलिदान की कल्पना की आँखों से देखकर मुसकरा रही है और जिस बूँदी में ऐसे मान के धनी पैदा होते हैं उस पर संसार आशीर्वाद के फूल बरसा रहा है। चलो हम दुर्ग रक्षा की तैयारी करें।

[सबका प्रस्थान]

[दृश्य-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान—नकली बूँदी-दुर्ग का बाह्य द्वार। महाराणा लाखा और अभय-सिंह का प्रवेश।]

महाराणा—दुर्ग टूटने की आशा। नकली दुर्ग के आस-पास की भूमि कैसी

ही लाल हो उठी है जैसे कि आकाश का पश्चिमी छोर हो रहा है। यह कैसी लज्जा की बात है कि हमारी सेना नकली बूँदी के दुर्ग पर अपना झण्डा स्थापित करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकी। वीरसिंह और उसके मुट्ठी-भर साथी अभी तक वीरतापूर्वक लड़ रहे हैं।

अभयसिंह—हाँ महाराणा हम तो समझते थे कि घड़ी-दो घड़ी में यह खेल खत्म हो जायगा लेकिन हमें आशा के विरुद्ध शूर-वीरों का मुकाबला करने के बजाय हाड़ाओं के अचूक निशानों का सामना करना पड़ा। यद्यपि वे लोग गिनती में थोड़े हैं किन्तु उन्होंने दीवारों की आड़ में उपयुक्त स्थान बना कर हम पर गोली और तीर बरसाना आरम्भ कर दिया। हमारी सेना इन अयाचित अचिन्तित और आकस्मिक प्रहारों से भौचक्की हो गई। अब दुर्ग के भीतर के हाड़ाओं की युद्ध-सामग्री समाप्त हो गई। आपकी प्रतिज्ञा पूरी होने में कुछ ही क्षणों का विलम्ब है। दुर्ग की दीवारों में जहाँ-तहाँ छेद हो गए हैं और वे धराशायी होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

महाराणा—यह भी अच्छा ही हुआ कि हमारे इस खेल में भी कुछ वास्तविकता आ गई। यदि हमें बिना कुछ पराक्रम दिखाए ही दुर्ग पर अपना झण्डा फहराने का अवसर मिल जाता तो मुझे जरा भी सन्तोष न होता और सच पूछो तो मुझे वीरसिंह की वीरता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं चाहता था ऐसे वीर के प्राणों की किसी प्रकार रक्षा हो सकती।

अभयसिंह—मैंने भी जब दुर्ग से अग्नि-वर्षा होते देखी तब मुझे कुछ आश्चर्य हुआ था और कुछ क्षणों के लिए सफेद झण्डी फहराकर युद्ध को रोक दिया था। उसके पश्चात् मैं स्वयं दुर्ग में गया और वीरसिंह की उसके साहस के लिए प्रशंसा की। साथ ही उससे अनुरोध किया कि तुम इस व्यर्थ प्रयास में अपने प्राण न खोओ। तुम महाराणा के नौकर हो तुम्हें उनके विरुद्ध हथियार न उठाना चाहिए। किन्तु उसने उत्तर दिया कि महाराणा ने हाड़ाओं को चुनौती दी है। हम उस चुनौती का उत्तर देने को मजबूर हैं। या तो जन्म भूमि और कुल के मान की रक्षा में प्राणों की बलि हमें दे देनी होगी या महाराणा को इस विवेकहीन प्रतिज्ञा से विमुख होना पड़ेगा। अब तीसरा कोई

रास्ता नहीं। महाराणा यदि हमारे प्राण लेना चाहते हैं तो खुशी से ले लें। लेकिन हम इतने कायर निर्लज्ज और निष्प्राण नहीं हैं कि अपनी आँखों से बूँदी का अपमान होते हुए देखें। मेवाड़ में जब तक एक भी हाड़ा है नकली बूँदी पर भी बूँदी की ही पताका फहराएगी।

महाराणा—निश्चय ही इन वीरों का जन्म-भूमि के प्रति आदरभाव सराहनीय है। यह मैं जानता हूँ कि इन लोगों के प्राणों की रक्षा करने का कोई उपाय नहीं। इतने बहुमूल्य प्राण लेकर भी मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी पड़ेगी। वह देखो दुर्ग की उस दरार में खड़ा हुआ वीरसिंह कितनी फुर्ती से बाण-वर्षा कर रहा है। अकेला ही हमारे सैकड़ों सैनिकों की टोली को आगे बढ़ने से रोके हुए है। धन्य है ऐसे वीर! धन्य है वह माँ जिसने वीर पुत्र को जन्म दिया। धन्य है वह भूमि जहाँ पर ऐसे सिंह पैदा होते हैं।

[नेपथ्य में गान]

वह देखो नभ मुसकाता है।
चले गए माँ के दीवाने
स्वर्ग-लोक में राज्य जमाने
नभ गाता है उनके गाने—
जो निज शीश चढ़ाता है,
वह देखो नभ मुसकाता है।
जिनकी तलवारों का पानी—
लिखता है उन्नत कहानी
उसकी होती अमर जवानी—
जो माँ पर मिट जाता है,
वह देखो नभ मुसकाता है।
चले गए जिनको था जाना
बना हुआ है आना-जाना,
पर जाना भी अमर बनाना,

खिलता हो खिलखिलाता है
यह देखो नभ मुसकाता है।

[तोप का धमाका और प्रकाश होता है]

महाराणा—यह देखो अभयसिंह भीलों के वार से वीरसिंह के प्राण-पखेरू उड़ गए। बूँदी के मतवाले सिपाही सदा के लिए सो गए। अब हम विजय-श्री प्राप्त कर सके। जाओ दुर्ग पर मेवाड़ की पताका फहराओ और वीरसिंह के शव को आदर के साथ यहाँ पहुँचाओ।

[अभयसिंह का प्रस्थान]

महाराणा—आज इस विजय में मेरी सबसे बड़ी पराजय छिपी हुई है स्वार्थ के दम्भ में आज कितने ही निर्दोष प्राणों की बलि ले ली।

[गाते-गाते चारणी का प्रवेश]

चारणी—

यह देखो नभ मुसकाता है।

महाराणा! अब तो आपकी आत्मा को शान्ति मिल गई होगी। अब तो आपने अपने सिर से कलंक का टीका धो लिया। वह देखो बूँदी के दुर्ग पर मेवाड़ के सेनापति विजय-पताका फहरा रहे हैं। वह सुनिए मेवाड़ की सेना में विजय-दुन्दुभि बज रही है।

महाराणा—चारणी! क्यों इस पश्चात्ताप से विकल प्राणों को तुम और दुखी करती हो। न जाने किस बुरी साइत में मैंने बूँदी को अपने अधीन करने का निश्चय किया था और अपने उस निश्चय को वहीं क्यों न समाप्त कर दिया जहाँ पर कि मेवाड़ी सेना बूँदी की सेना से पराजित होकर वापस लौट आई थी। वीरसिंह की वीरता ने मेरे हृदय के द्वार खोल दिए हैं मेरी आँखों का पर्दा हटा दिया है। मैं देखता हूँ ऐसी वीर जाति को आधीन करने की अभिलाषा करना पागलपन है। वैसा ही पागलपन जैसा कि अलाउद्दीन खिलजी का मेवाड़ियों को अपना गुलाम बनाने की कामना में था।

चारणी—तो क्या महाराणा इस नकली दुर्ग की आश्चर्यजनक अभूतपूर्व स्वर्ण-घटना के बाद भी मेवाड़ और बूँदी के हृदय मिलाने का कोई रास्ता नहीं

निकल सकता ?

[वीरसिंह के शव के साथ अभयसिंह का प्रवेश। शव को रखकर सब उठाने वाले चले जाते हैं।]

महाराणा—मारमली ? इस शहीद के चरणों के पास बैठकर (शव के पास बैठते हैं) मैं अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता हूँ किन्तु क्या बूँदी के राव तथा हाड़ा वंश का प्रत्येक राजपूत आज की इस दुर्घटना को भूल सकेगा ?

[राव हेमू का प्रवेश]

राव हेमू—क्यों नहीं महाराणा ? हम युग-युग से एक हैं और एक रहेंगे। आपको यह जानने की आवश्यकता थी कि राजपूतों में न कोई राजा है, न कोई महाराजा है। सब देश जाति और वंश की मान-रक्षा के लिए प्राण देने वाले सैनिक हैं। हमारी तलवार अपने ही स्वजनों पर न चलनी चाहिए। बूँदी के हाड़ा सुख और दुःख में सदा से चित्तौड़ के सीसौदियों के साथ रहे हैं और रहेंगे। हम सब राजपूत भूमि के पुत्र हैं हम सबके हृदय में एक ही ज्वाला जल रही है। हम कैसे एक-दूसरे से पृथक् हो सकते हैं ! वीरसिंह के बलिदान ने हमें जन्म भूमि का मान करना सिखाया है।

महाराणा—निश्चय ही महाराव ! हम सम्पूर्ण राजपूत जाति की ओर से इस अमर आत्मा के आगे अपना मस्तक झुकाएँ।

[सब बैठकर वीरसिंह के शव के आगे झुकते हैं]

[पटाक्षेप]

यह मेरी जन्मभूमि है

पात्र-सूची

कर्नल होम्स
एक अंग्रेज सैनिक अफसर ।

मिस होम्स
कर्नल होम्स की पुत्री ।

रायसाहब सीताराम
एक अंग्रेज-भक्त देश-द्रोही रईस ।

गुलाम मुहम्मद
एक अंग्रेज भक्त देश-द्रोही मुस्लिम ।

मनोहरलाल
रायसाहब सीताराम का पुत्र ।

अली मुहम्मद
गुलाम मुहम्मद का पुत्र ।

जुलूस की भीड़, सैनिक दल आदि ।

पहला दृश्य

[स्थान—कर्नल होम्स का बंगला। समय—दोपहर के दो बजे। कर्नल होम्स अपनी फौजी पोशाक पहन रहे हैं। कमरे की छत में लगा हुआ बिजली का पंखा तीव्र गति से घूम रहा है। कालेज से लौटकर बिजली-सी गति से कर्नल होम्स की २० वर्षीय लड़की मिस होम्स कमरे में प्रवेश करती है। कुछ बेचैन-सी जान पड़ती है। बड़ी झुंझलाहट के साथ पुस्तकें अलमारी में फेंक देती है और एक आराम-कुर्सी पर धम से पड़ रहती है।]

मिस होम्स—ओह, कितनी गरमी है! मेरा तो सिर चकरा गया !!

कर्नल होम्स—यही तो इस मुल्क में खराबी है। यहाँ की आबोहवा आदमी की काम करने की ताकत छीन लेती है। ऐसी गरमी में भी हमें काम करना पड़ता है। तुम तो बेटी पसीने-पसीने हो गई हो। तुमसे कितनी बार कहा बेटी, तुम कार में बैठकर कालेज आया करो लेकिन तुम पैदल ही जाती हो!

मिस होम्स—पापा, कार में बैठे हुए शर्म मालूम होती है। इस कड़ी गरमी में कितने ही आदमी सड़कों पर मिट्टी कूटते नजर आते हैं, कितने ही ऐसे लोग मिलते हैं जिनके बदन पर कपड़े नहीं हैं, सिर पर टोप तो क्या एक टोपी भी नहीं है, कितने ही ऐसे भिखारी बच्चे मिलते हैं जो एक पैसे के लिए एक-एक फर्लांग तांगों के पीछे दौड़ते चले जाते हैं, पापा, ऐसे लोगों के बीच में मोटर में बैठकर कैसे जाऊँ?

कर्नल होम्स—तुम पर गांधी या लेनिन की छाया पड़ गई है। हाँ, यह तो तुमने नहीं बताया कि आज कालेज से जल्दी क्यों लौट आई?

मिस होम्स—कालेज के करीब-करीब सभी स्टूडेण्ट्स की मर्जी थी कि आज जलूस में शामिल हुआ जाए। दस-बीस लड़कों ने क्लासेज में बैठना पसन्द किया, बाकी चले आए। मैं भी चली आई।

कर्नल होम्स—क्यों?

मिस होम्स—इसलिए कि मैं अपने हिन्दुस्तानी भाइयों का दिल दुखाना नहीं चाहती थी। आप इस गरमी में फौजी ड्रेस पहनकर कहाँ जाने की तैयारी कर रहे हैं ?

कर्नल होम्स—ड्यूटी पर ! आज कांग्रेस ने मिस्टर गांधी की गिरफ्तारी के विरोध में जो जुलूस निकालना तय किया है कलक्टर साहब ने उसे न निकालने का हुक्म दिया है और कांग्रेस ने हुक्म न मानने पर कमर कसी है।

मिस होम्स—तो इसमें आप क्या करेंगे ?

कर्नल होम्स—हथियारों के जोर पर सरकारी हुक्म की पाबन्दी कराऊँगा। अगर सरकारी हुक्मों की बेइज्जती तरह की गई तो अंग्रेजों का राज्य यहाँ कैसे कायम रह सकता है ? अभी जुलूस निकलेगा शाम को जलसा होगा जिसमें अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए लोगों को बहकाया जाएगा।

मिस होम्स—तो इसमें कानून के खिलाफ कौन-सी बात है। हिन्दुस्तानी लोग अपना हक चाहते हैं। वे आजादी माँगते हैं।

[कर्नल साहब पूरी पोशाक पहन चुके हैं और कमरे में चहल-कदमी करते हैं।]

कर्नल होम्स—हक चाहते हैं ! आजादी माँगते हैं !! इस आजादी का मतलब क्या है ? तुम जानती हो ? बेटी हम अपने नहीं इन हिन्दुस्तानियों के भले के लिए ही आए हैं। हमारा राज इस देश में अमन और कानून की हिफाजत करने के लिए है। तुमने हिस्ट्री पढ़ी है। तुम जानती हो हमारे आने के पहले यहाँ का क्या हाल था ? मुसलमान मराठे राजपूत ठग पिण्डारी वगैर ने लड़ाई, ठगी डकैती से मुल्क बरबाद कर रखा था। हमने उन्हें अमन से रहना सिखाया है।

मिस होम्स—हमने उनकी जिन्दगी छीन ली है। उन्हें डरपोक और नामर्द बना दिया है। अमन और कानून की हिफाजत के नाम पर, तहजीब और तालीम के बहाने उनकी नसों में मौत का पानी भर दिया है। हमने धीरे-धीरे जहर दे-देकर उन्हें मौत के घाट पर पहुँचाया है।

कर्नल होम्स—तुम भी ऐसा कहती हो बेटी !

मिस होम्स—हाँ मैं भी ऐसा कहती हूँ पापा ! अंग्रेजों के बनाए हुए इतिहासों को पढ़कर नहीं कालेज में जो नौजवान पढ़ते हैं उनके चेहरों को उनके रहन-सहन को देखकर कहती हूँ। वे विदेशी कपड़ों में साहबी ठाट में अकड़े हुए ऐंठू अपने-आपको मानो खुदा समझते हैं लेकिन जिन्हें अपने मुल्क की गैरत नहीं वे क्या इन्सान हैं ? हमने इस देश के धन्धे छीन लिए तालीम ने लोगों की धन्धे करने की आदत छुड़ा दी वे नौकरियों के लिए दर-दर घूमने लगे अब हम उन्हें जो चाहे जैसे नाच नचाते हैं। मुगलों ने इस देश को सिर्फ फतह किया था मारा नहीं था हमने इसे फतह नहीं किया बल्कि मार डाला।

कर्नल होम्स—तुम्हारी बातें मैं नहीं समझ पाता बेटी !

मिस होम्स—आप फौजी आदमी हैं। आपने अपने दिमाग को आजाद होकर सोचने देने की तकलीफ नहीं दी लेकिन मैं जो महसूस करती हूँ साफ-साफ कहती हूँ। मैं अंग्रेज लड़की हूँ उस अंग्रेज कौम की जिसने आजादी के लिए अपने बादशाह के सिर को कलम कर देने में पाप नहीं माना। हमें कदर करनी चाहिए उन लोगों की जो अपने मुल्क को आजाद करना चाहते हैं जो दुनिया में इन्सान बनकर रहना चाहते हैं। हमें मुगलों के इतिहास से कुछ सीखना चाहिए, वे यहाँ हिन्दुस्तानी बनकर रहे, यहाँ की दौलत को उठाकर तुर्किस्तान नहीं ले गए, उन्होंने यहाँ के बाशिन्दों को अपने बराबर दरजा दिया। वे यहाँ एक जान हो गए। पापा क्या हम ऐसा नहीं कर सकते ? क्या हम हिन्दुस्तान की गरीबी दूर नहीं कर सकते ?

कर्नल होम्स—तुम्हारी तरह सभी अंग्रेज सोचने लगें तो कर्नल होम्स इंग्लैण्ड के किसी गाँव में मुर्गी पालते नजर आएँ। लंकाशायर की फैक्ट्रीज पर ताले पड़ जाएँ। लन्दन के आसमान को छूने वाले मकानात मिट्टी में मिल जाएँ। अपने घर को बरबाद करके दूसरों के घर को-

मिस होम्स—आबाद कैसे किया जाए ? यही तो आप कहना चाहते हैं। हमें इतना लालच क्यों हो कि उसके लिए हमें ४ करोड़ लोगों को खाने-दाने के लिए मोहताज बनाना पड़े ?

कर्नल होम्स—तुम तो ठीक हिन्दुस्तानियों की तरह बात करती हो।

मिस होम्स—हिन्दुस्तानियों की तरह ! मैं हिन्दुस्तानी नहीं तो क्या हूँ ? अंग्रेज की बेटी हूँ लेकिन मेरा जन्म हिन्दुस्तान में हुआ है। यह मेरी जन्मभूमि है।

[राय साहब सीताराम का प्रवेश। सीताराम की आयु ५० से ऊपर है। आप शहर के जाने-माने रईस हैं। हिन्दू-हितों के लिए प्रायः ऐसे ही निरन्तर घोषणा करते रहने वालों में हैं। सरकारी लोगों में उनका प्रवेश और विश्वास है।]

कर्नल होम्स—आइए राय साहब सीताराम !

[दोनों हाथ मिलाते हैं पास-पास कुर्सियों पर बैठते हैं। राय साहब रूमाल से कपाल का पसीना पोंछते हैं।]

कर्नल होम्स—कहिए शहर की क्या हवा है ? जुलूस कैसा निकलेगा ?

राय साहब—जुलूस तो निकलेगा ! लेकिन

कर्नल होम्स—लेकिन क्या

राय साहब—यही जो मैं आपसे कह चुका हूँ। हम लोग अंग्रेज हुकूमत के वफादार खादिम हैं। ऐसी चाल चलेंगे कि कांग्रेसी जिन्दगी भर जुलूस निकालने का नाम न लें। सच बात तो यह है कर्नल साहब कि मैं तो दिल से हिन्दुस्तान में अंग्रेजी हुकूमत चाहता हूँ। जो लोग अंग्रेजी हुकूमत से छुटकारा चाहते हैं वे खुदकुशी करने पर आमादा हैं। उधर रूस इधर जापान एक भालू एक भेड़िया। उनके आगे गांधी की अहिंसा कैसे चलेगी ? मैं तो हिन्दुस्तान की भलाई के लिए ही कांग्रेस का अन्त चाहता हूँ। अच्छा अब मैं जाता हूँ क्योंकि आप जानते ही हैं, मुझे अभी बहुत-कुछ करना है।

[सीताराम खड़े होते हैं। कर्नल होम्स भी खड़े होकर हाथ मिलाते हैं। राय साहब का प्रस्थान।]

कर्नल होम्स—देखा बेटी इन्हीं लोगों की तुम वकालत करती हो ? इनकी आत्मा

मिस होम्स—इसे हमने मार डाला है। हमने इनकी इन्सानियत को खुद गरजी के पहाड़ के नीचे दबा दिया है !

[एक ६० वर्षीय मुसलमान नेता का सफेद लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरते

हुए प्रवेश ।]

कर्नल होम्स—आइए, हाजी गुलाम मुहम्मद साहब !

[दोनों पास बैठते हैं ।]

कर्नल होम्स—अभी-अभी राय साहब सीताराम यहाँ से गए हैं ।

गुलाम मुहम्मद—जी हाँ उनसे मुलाकात हुई थी ।

कर्नल होम्स—क्या मुसलमान भी जुलूस में शामिल हो रहे हैं ?

गुलाम मुहम्मद—कुछ पढ़े लिखे बेवकूफ जिन्होंने कुछ रद्दी किताबें पढ़ ली हैं या कुछ बेकार और गरीब लोग । अमीर मुसलमानों में से कोई भी कांग्रेस का साथ नहीं देगा । मैं भी तो मैंने सोच रखा है कि इस बार कांग्रेस को ऐसा सबक पढ़ाया जाए कि खुदा की कसम लाख कोशिश करने पर भी फिर कभी मुसलमान उसके साथ न जाएँ ।

कर्नल होम्स—शुक्रिया ! अब हम लोग चलें ।

[कर्नल होम्स और हाजी गुलाम मुहम्मद का प्रस्थान]

मिस होम्स—(सहसा खड़ी होकर) कैसी खतरनाक साजिश है ! हिन्दू और मुसलमान अपने ही मुल्क अपने ही नेशन के खिलाफ बेईमानी क्यों करते जाते हैं ? कुछ रकमों कुछ खिताबों और बेईमानी से कमाई हुई जायदादों को कायम रखने के लिए । इन्सानियत का सबसे ऊँचा खयाल है आज़ादी सबसे पहली ख्वाहिश है आज़ादी सबसे प्यारी चीज भी है आज़ादी; उसे चन्द सिक्कों की खातिर ये बेच देना चाहते हैं । मैंने भी हिन्दुस्तान का अन्न खाया है, क्या मेरा उसके लिए कोई फर्ज नहीं । जाऊँ, शायद कुछ कर सकूँ ।

[फुर्ती से प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[राय साहब के मकान का सामने वाला हिस्सा। स्वयं-सेविकाओं का एक दल झण्डा लिए गाता हुआ बढ़ रहा है। उनका पुत्र मनोहरलाल विस्मय-विमुग्ध-सा यह दृश्य देख रहा है।]

स्वयं-सेविकाओं का दल—(सम्मिलित स्वर से)

हम झंडे का मान रखेंगी।

धवल हिमालय की चोटी पर,
इसको फहरायेंगी फर-फर,
इससे पुलकित होगा घर-घर,
गूँजेगा आजादी का स्वर,
हम प्राणों से प्राण भरेंगी।
हम झंडे का मान रखेंगी।

हमें रोकने वाले आयें
गोली-गोले भी बरसायें,
हम ज्वाला को गले लगायें,
हँस-हँस माँ पर प्राण चढ़ायें,
हम जननी की लाज रखेंगी।
हम झंडे का मान रखेंगी।

आजादी के गाने गायें,
सारे देश को आज जगायें
पायें जननी का सम्मानें,
आजादी के बन परवाने,
जन-जन में तूफान भरेंगी।
हम झंडे का मान रखेंगी।

[गाते-गाते दल का प्रस्थान]

मनोहर—कैसा प्यारा और पावन दृश्य है यह! मेरे सोए हुए प्राण भी

मानो करवट बदलने लगे हैं। आँखों के आगे भारत का गौरवमय अतीत नाचने लगा है। कहाँ गया हमारा विश्व-व्यापी साम्राज्य? आज हमने अपने कन्धों पर गुलामी का जुआ लाद रखा है।

[मोटर-ड्राइवर का प्रवेश]

मोटर-ड्राइवर—बाबू साहब मोटर तैयार है। रेस-कोर्स चलेंगे न?

मनोहर—आज मैं नहीं जाऊँगा। मोटर को गैराज में छोड़ दो।

[मोटर-ड्राइवर का प्रस्थान]

मनोहर—यह है हमारा जीवन! जिस समय इस नगर के हजारों युवक-युवतियाँ वृद्ध-वृद्धाएँ, बालक-बालिकाएँ राष्ट्रीय झण्डे के नीचे सरकारी आज्ञा की अवहेलना करते हुए, अपने हृदय-सम्राट् महात्मा गांधी के प्रति अपना आदर और विश्वास प्रकट करने के लिए जा रहे हैं, मुझे रेस-कोर्स जाने की सूझी थी। यही तो कारण है कि हम गुलाम हैं।

[बँगले में से खानसामा का प्रवेश]

खानसामा—चाय तैयार है।

मनोहर—जाओ मैं आता हूँ।

[खानसामा का प्रस्थान]

मनोहर—चाय तैयार है! कैसा घृणित जीवन है हमारा! हमारे दिल में देश के लिए जरा-सा भी दर्द नहीं है। आज मेरे पास लाखों की सम्पत्ति है। मुझे अनुभव ही नहीं होता कि देश अभाव की आग में जल रहा है! पर जब किसी स्वतन्त्र देश के युवक के सामने जाता हूँ तो मेरी आँखें नीची हो जाती हैं। मैं शर्म से जमीन में गड़ जाना चाहता हूँ। उस समय मुझे यह धन-सम्पत्ति ऐश्वर्य अभिशाप जान पड़ता है। इन्होंने मेरे प्राणों को खींच लिया है मैं आज देश के स्वर-में-स्वर मिलाकर आजादी का गीत भी नहीं गा सकता।

[मिस होम्स का प्रवेश]

मनोहर—ओहो, आप हैं, मिस होम्स! आज इधर किधर भूल पड़ीं?

मिस होम्स—अक्सर आप भूल किया करते थे आज मैंने भूल करने की ठान ली। आज कैसी खुशी का दिन है भाई मनोहरलाल! आप जानते

तीसरा दृश्य

[स्थान—मस्जिद के सामने का हिस्सा, कर्नल होम्स, मिस्टर सीताराम और मौलवी गुलाम मुहम्मद का बातें करते हुए प्रवेश ।]

कर्नल होम्स—इस शहर में पहले कभी इतना शानदार जुलूस नहीं निकला । यह जानते हुए कि आज जेल लाठी और मौत का सामना करना पड़ सकता है लोगों का समुद्र उमड़ आया है । गांधी के नाम में ही कुछ जादू है । इससे जान पड़ता है कि अंग्रेजी राज्य की तरफ से हिन्दुस्तानियों के दिल फिर गये हैं ।

सीताराम—ऐसी बात नहीं है कर्नल साहब । यह तो भूखे और बेकार मामों का मजमा है और इनमें भी एकता नहीं है । यह जुलूस तो बुझते हुए चिराग की चमक है । महात्मा गांधी ने अपने ऊपर जो धार्मिकता का आध्यात्मिकता का पर्दा डाल रखा है उसी से कुछ लोग उनकी तरफ आकर्षित हुए हैं नहीं तो अंग्रेजी शासन के प्रति किसी को शिकायत नहीं है । मेरी तो ऐसी ही धारणा है ।

गुलाम मुहम्मद—और अभी मस्जिद में से 'या ! अली' के नारे लगने दीजिए । ये लोग ऐसे भागेंगे मानो ऊपर आसमान से बिजली गिर रही है । मानो नीचे से जलजला आ रहा है ।

[पास ही से गाने की आवाज आती है]

हम आजादी के परवाने ।

हमने देखा है उजियाला
अपनी ओर बुलाने वाला
देखा उसका हुस्न निराला

चले प्राण को गले लगाने ।
हम आजादी के परवाने ।

आवें हमें मिटाने वाले
हम पर तोप चलाने वाले
हम हैं जान लुटाने वाले

आए, मर-मरकर जी जाने।
हम आजादी के परवाने।

कर्नल होम्स—यह तो एक नया ही जुलूस-सा जान पड़ता है। सभी तुर्की टोपी पहने हैं। यह देखो न हाजी साहब आपकी मस्जिद में से टिड्डियों के झुण्ड की तरह निकल रहे हैं। उनके हाथ में भी तिरंगा झण्डा है।

गुलाम मुहम्मद—मैं खुद हैरान हूँ कर्नल साहब! ये तो मेरे अपने आदमी हैं। किसी ने इन्हें बहकाया है। हम मुसलमानों में भी दगाबाजों की कमी नहीं है। लेकिन कोई फिक्र नहीं मैं उन्हें रास्ते पर लाता हूँ।

[प्रस्थान]

कर्नल होम्स—रास्ते पर लाता है? मैं सब समझता हूँ हाजी साहब तुम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। मुझे ही धोखा देते हो! और राय साहब आपके आदमी

सीताराम—जी वे अभी तक आए ही नहीं!

कर्नल होम्स—आए ही नहीं! तो आपने क्या खाक किया है? वैसे ही आप रायबहादुर बन जाना चाहते हैं! आपका लोगों पर असर ही क्या है?

सीताराम—उन्हें किसी ने बहका दिया है!

[कुछ सिपाही मशीनगन लेकर आते हैं और उसे सड़क के बीच में खड़ी कर देते हैं।]

कर्नल होम्स—तो फिर यह मशीनगन ही इन आजादी के दीवानों को होश में लाएगी। आप लोग किसी काम न आ सके। इन लोगों को गुस्ताखी की सजा अपने-आप मिल जाती और

सीताराम—और सरकार बदनामी से बच जाती!

कर्नल होम्स—आप भी ठीक कहते हैं राय साहब! हमें सरकारी हुक्म की इज्जत रखना लाजिम है। अंग्रेजी राज की शान को हम जरा भी नहीं झुकने देना चाहते। सरकारी कानून को तोड़ने की जुर्रत! इसे अगर गवारा किया गया तो जल्दी ही हम लोगों को बोरिया-बसना बाँधकर इंग्लैण्ड का रास्ता नापना पड़ेगा।

[सड़क की दूसरी तरफ से आवाज आती है—'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद हिन्दुस्तान हो आज़ाद' महात्मा गांधी की जय !']

कर्नल होम्स—लो यह जुलूस आ गया है। (एक सिपाही से) तुम जाओ और जुलूस के नेता को समझाओ कि अंग्रेजी सरकार का हुक्म तोड़ना बच्चों का खेल नहीं है। यह सड़क पर जो मशीनगन खड़ी है यह महज धमकी नहीं है यह एक घड़ी में आग उगलने लगेगी। आप लोग अपनी जिम्मेदारी को समझें। बेगुनाह लोगों के खून से इस सड़क की गिट्टियों को तर न करें।

[सिपाही का प्रस्थान और गुलाम मुहम्मद का प्रवेश]

गुलाम मुहम्मद—गजब हो गया सरकार। 'इस घर में आग लग गई घर के चिराग से'। आपकी साहबजादी रायसाहब के साहबजादे और मेरे छोकरे ने हमारे खिलाफ बगावत की है। हमने जो किले बनाए थे वे मिट्टी में मिल गए। हमारे सभी आदमियों को उन्होंने बहकाकर कांग्रेस के जुलूस में शामिल कर लिया है। वे तीनों जुलूस में सबसे आगे हैं। अब आप फायर भी कैसे कराएँगे ?

कर्नल होम्स—अंग्रेज ड्यूटी पर यह नहीं देखता कि उसका वार किस पर हो रहा है। उस वक्त न कोई उसका बाप है न भाई न बेटा न बेटी। वह आँखें बन्द करके काम किए जाता है।

गुलाम मुहम्मद—फिर भी उन्हें समझाने की कोशिश तो करनी चाहिए।

कर्नल होम्स—जरूर, तुम उन्हें बुलाकर लाओ।

[कलेक्टर का प्रवेश कर्नल तथा सिपाही सेल्यूट देते हैं]

सीताराम—आज जैसे मेरी आँखों पर से परदा हट रहा है।

कलक्टर—मिस्टर होम्स क्या हाल है ?

कर्नल होम्स—आप देख ही रहे हैं। मेरी लड़की ने भी बगावत का झण्डा उठाया है।

[गुलाम मुहम्मद का मिस होम्स, बली मुहम्मद, और मनोहरलाल के साथ प्रवेश।]

सीताराम—कैसा सुन्दर दृश्य है! इन तीनों के चेहरों पर कैसा तेज है! जिस देश में मिस होम्स-सी युवती और बली मुहम्मद और मनोहर—जैसे युव

हों वह गुलाम कैसे रह सकता है ?

कर्नल होम्स—मैं और कलक्टर साहब भी आप तीनों बहादुरों से बहुत खुश हैं और आपसे दरख्वास्त करते हैं कि आप लोग पब्लिक को समझाएँ कि वे जुलूस बन्द करके घर लौट जाएँ।

मिस होम्स—हमें क्या करना चाहिए यह हम खूब जानते हैं।

मनोहर—हम महात्मा गांधी की इज्जत सरकारी हुक्म से ज्यादा करते हैं और उस इज्जत को रखने के लिए अपने प्राणों की कीमत देने को तैयार हैं।

अली मुहम्मद—हम अपने खून के समुद्र में जुल्म की मस्तनत को डुबा देंगे।

कलक्टर—मिस होम्स मेरी बात भी आप नहीं मानेंगी !

मिस होम्स—मैं आपकी इस वक्त नहीं मानने को मजबूर हूँ।

कर्नल होम्स—बेटी !

मिस होम्स—नहीं कर्नल होम्स ! इस वक्त आप मेरे फादर नहीं हैं। आप सरकारी मशीन के पुर्जे हैं। मैं इस अभागे देश की एक पुत्री हूँ। इस देश में मैं पैदा हुई हूँ इसका नमक मैंने खाया है, इसके लिए मेरा जो फर्ज है वह मैं अदा कर रही हूँ। मैं इस राष्ट्र का अंग हूँ। इसके सुख-दुख मेरे सुख-दुख हैं। इसकी जिन्दगी और मौत मेरी जिन्दगी और मौत है।

कलक्टर—इंग्लैण्ड तुम्हारा मुल्क नहीं हिन्दुस्तान तुम्हारा राष्ट्र है ? यह तुम क्या कहती हो मिस होम्स !

मिस होम्स—यह बात आप लोगों से नए सिरे से कहने की जरूरत नहीं। अमेरिका की स्वतन्त्रता के युद्ध में अंग्रेजों ने अंग्रेजों के ही खिलाफ हथियार उठाकर अमेरिका को इंग्लैण्ड की गुलामी से आजाद किया था। देश और राष्ट्र किसे कहते हैं यह अंग्रेज कौम खूब जानती है। दुनिया का इतिहास क्या कहता है ? हिन्दुस्तान का ही पुराना इतिहास देखिए। जिस तरह बाबर, अहमदशाह अब्दाली चंगेजखाँ नादिरशाह वगैरा को हिन्दुस्तान पर हमला करते वक्त यहाँ के मुसलमानों का मुकाबला सहना पड़ा था उसी तरह आपको भी मिस होम्स की बगावत का मुकाबला करना पड़ेगा

का भी तकाजा है कि तुम इन्साफ करना सीखो ।

कर्नल होम्स—मैं इन बातों पर सोचने की जरूरत नहीं समझता । मेरा हुक्म है कि जुलूस को बन्द कर दो नहीं तो मशीनगन अपना काम करेगी ।

मिस होम्स—उसका मुँह किसने बन्द किया है कर्नल होम्स ! (मशीनगन के आगे खड़ी हो जाती है । उसके पीछे अली मुहम्मद और उसके पीछे मनोहरलाल खड़ा होता है ।) लेकिन उसका पहला निशाना मुझ पर, दूसरा अली मुहम्मद पर, तीसरा मनोहर पर, उसके बाद भी अगर अंग्रेज हुकूमत की खून की प्यास न बुझे तो बाकी भीड़ पर गोलियाँ चलाइए । आज माँ के तीन लाड़ले बच्चे एक राष्ट्र-मन्दिर की नींव डालेंगे । अपनी हड्डियों और खून से माँ का यह मन्दिर बनाएँगे ।

कर्नल होम्स—अच्छा तो फायर

कमाण्डर—ठहरो ! जरा-सी बात के लिए इतना सख्त कदम उठाने की जरूरत नहीं । कर्नल होम्स अभी जुलूस निकलने दो बाद में बागियों से कानून समझ लेगा । ले जाओ मशीनगन !

[सिपाही मशीनगन हटा ले जाते हैं । 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे से आसमान गूँज उठता है । 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगते हैं । गाते हुए जुलूस गुजर रहा है ।]

गान

हिन्दुस्तान बुद्धों के धाम !
तुमको सौ-सौ बार प्रणाम !
तुमको सौ-सौ बार सलाम !
मुस्लिम, आर्य बौद्ध ईसाई,
जैन पारसी, सिख, सब भाई
तुम पर सब भाई सौदाई ।
तुम सबकी जननी अभिराम !
हिन्दुस्तान बुद्धों के धाम !

गंगा में है गान तुम्हारा
हिमगिरि पर उत्थान तुम्हारा
पग धोता है सागर खारा
चढ़ा पदों पर रत्न ललाम!
हिन्दुस्तान, सुखों के धाम!

अन्तर कितना वैभवशाली
बाहर की कितनी हरियाली,
कोने-कोने में खुशहाली,
तुम पर निर्भर जग के काम!
हिन्दुस्तान, सुखों के धाम!

कुछ सदियों से हम पथ भूले,
और लुटेरे आकर फूले,
लेकर विभव तुम्हारा झूले
हम कहलाने लगे गुलाम!
हिन्दुस्तान सुखों के धाम!

माँ सन्तान तुम्हारी सारे,
शीश कटाने का व्रत धारे
बढ़ते हमको प्राण न प्यारे
मुक्ति बिना कैसा विश्राम?
हिन्दुस्तान, सुखों के धाम!
तुमको सौ-सौ बार प्रणाम!
तुमको सौ-सौ बार सलाम!
[पदालोप]

निष्ठुर न्याय

पात्र-सूची

महाराणा रत्नसिंह

मेवाड़ के महाराणा।

राजकुमार अजयसिंह

रत्नसिंह का एक-मात्र पुत्र।

श्यामा

भीलराज की पुत्री।

बारहठजी, सेनापति, सैनिक आदि।

पहला दृश्य

[स्थान—जंगल में एक कुटी । भील-कुमारी श्यामा और मेवाड़ के युवराज अमरसिंह खड़े हुए बातें कर रहे हैं । प्रभात का झुटपुटा हो गया है, दीपक बुझने के लिए किसी फूँक की प्रतीक्षा कर रहा है ।]

कुमार—श्यामा अब मुझे जाना ही होगा । समाज के नियम निर्मम हैं । दो मिलनोत्सुक हृदयों को सूर्य के प्रकाश में मिलने की आज्ञा वह नहीं देता । देखो आकाश लाल हो गया है, पक्षी चहक उठे हैं । आकाश में वह जो लाल गोला-सा उदय हो रहा है वह मुझसे कह रहा है पापी कर्म-पथ तुम्हारी बाट जोह रहा है ।

श्यामा—मैं जंगली हरिणी हूँ । नगरों से और महान् व्यक्तियों के समाज से मेरी जान-पहिचान नहीं है । लेकिन मेरा भी अपना अस्तित्व और व्यक्तित्व है । मेरे भी माँ-बाप हैं, पड़ोसी हैं, जाति-भाई हैं और सहेलियाँ हैं और उन सभी ने मेरे सामने मर्यादा की कुछ रेखाएँ खींच रखी हैं । आप मेवाड़ के युवराज हैं और मैं एक भील की कन्या फिर भी आत्म-गौरव को ऐश्वर्य और शक्ति की तराजू पर नहीं तोला जा सकता ।

कुमार—तुम्हारा मतलब !

श्यामा—मतलब यही कि भील-समाज अपनी मर्यादा को किसी प्रकार राजपूतों के उच्चतम वंश के आगे झुकाने को प्रस्तुत नहीं । वह आपकी भूल पर कृपा की कोर देखकर तलवार से मेरा सिर उतारने को उतावला होगा ।

कुमार—इसका उपाय ?

श्यामा—उपाय यही है कि पर्वत-मालाएँ इस सरिता को निर्वासन दें तो आप मुझे समुद्र की लहरों-सी भुजाओं में स्थान दें । आप अपना प्रेम का आँचल फैलाएँ तो संसार जिसे समाज कहता है उस भूख से हटकर मुस्कराती हुई उसमें आ डूबेगी । लेकिन यह अन्धकार का आवरण डालकर

लाया जाली नहीं करेगी ।

कुमार—तुम क्या चाहती हो ?

श्यामा—वही जो मुझे चाहना चाहिए । आज रात आप मेरे एकान्त के अतिथि रहे हैं । यह बात संसार से छिपी न रहेगी और वह इस बात पर विश्वास भी नहीं करेगा कि मधुप पुष्प के पास जाकर भी रस से वंचित रहा है । मैं कहती हूँ अपनी भावना को अँधेरी गुफा में रखकर चोर न बनाओ प्रकाश में लाकर विद्रोही उसे बनाओ । हमें समाज की जंजीरें तोड़नी चाहिएँ । बोलो कुमार, क्या आप मेरा हाथ उसी तरह पकड़ सकते हैं, जिस तरह राजपूत कन्या का ?

कुमार—श्यामा ! तुम भीलराज की कन्या हो । तुम्हारे पिता ने तुम्हें शिक्षा की आँखें भी दी हैं । सुन्दर संस्कारों से भी विभूषित किया है । भगवान् ने तुम्हें बनाते समय अपने हृदय का सम्पूर्ण रस और स्नेह डाला है । तुम महाज्योति की एक किरण हो—विद्युत् की रेखा हो—जाति-पाँति के बादल तुम्हारे तेज को छिपा नहीं सकते उलटे तुम्हारे तेज से प्रकाशित हो उठते हैं । यदि मैं तुम्हें अपने जीवन में साथ रख सकूँ तो इससे बड़ी सुख की बात मुझे क्या हो सकती है, किन्तु…

श्यामा—किन्तु क्या ?

कुमार—किन्तु, मैं हूँ मेवाड़ का युवराज मुझ पर मेरा विशेष अधिकार नहीं है । आज की रात भी मैंने चुराकर ही तुम्हें दी है और उसका दण्ड मुझे क्या भोगना पड़ेगा यह भगवान् ही जाने । मेरा जीवन प्रजा की धरोहर है उसकी इच्छा के विरुद्ध मैं कुछ भी नहीं कर सकता । मैं यह भी जानता हूँ कि समाज के शान्त जीवन में भयंकर कोलाहल पैदा किए बिना हम अपनी इच्छाओं के फल नहीं पा सकते ।

श्यामा—तो कुमार, क्या चिर काल के लिए काल रात्रि से भी अधिक काला अन्धकार कर देने के लिए ही आपने मेरी कुटी में स्नेह का दीपक जलाया था ? जो कुटी आपकी प्रेम भरी साँसों से अनुप्राणित हो चुकी है उसमें जीवन भर प्रलय की आँधी चलती रहेगी ? जिन आँखों ने आपको देखा है, वे निरन्तर

जलती ही रहेगी ! आँसुओं का महासमुद्र भी उन्हें बुझा न सकेगा उनकी ज्योति बुझ जाएगी लेकिन जलन नहीं बुझेगी ।

कुमार—श्यामा ! तुम मुझसे जो कहोगी मैं वही करूँगा किन्तु मुझे तुम्हारे विवेक पर विश्वास है ।

श्यामा—कुमार, मैं भीख नहीं माँगती और भीख नहीं माँगूँगी । मैं समझती हूँ जिसे हृदय चाहता है उसे प्यार करने का मुझे अधिकार है और उस अधिकार से मुझे समाज का न्याय-दण्ड भी वंचित नहीं कर सकता ।

[नेपथ्य में तुरही की आवाज]

कुमार—सुनती हो श्यामा ! हमारे सैनिक-शिविर में रण की तुरही बज रही है । तुममें कितना नशा है श्यामा मैं भूल ही गया था कि मुझे आज रण यात्रा पर जाना है । तुम्हें सामने पाकर मैं अपने जीवन का आदि-अन्त भी भूल जाता हूँ किन्तु संसार का कटु सत्य तुरन्त ही तुरही बजाने लगता है । मुझे प्रेम-मदिरा का प्याला फेंककर कर्म की तलवार हाथ में लेनी पड़ती है ।

श्यामा—किन्तु, हिंसा ही तो जीवन की चरम साधना नहीं है ।

कुमार—जिसके हाथ में राजदण्ड है वह हिंसा का उत्तर हिंसा से देने को मजबूर है । मैं कितना सोचता हूँ कि मैं राजकुमार न होता एक गरीब किसान होता तो मेरा उत्तरदायित्व कितना हल्का रहता । मैं अपने-आपको तुम्हारे चरणों पर डालकर जीवन को सफल समझता । लेकिन अब मैं हूँ मेवाड़ का राजकुमार । मेरे ऊपर देश और जाति की मान-रक्षा का बोझ आठों पहर लदा रहता है । फिर मेवाड़ ! उस पर तो मालवी आँखें उसके उन्नत मस्तक को झुकाने की स्पर्धा लेकर टकटकी लगाए रहती हैं । मालवे के सूबेदार ने फिर मेवाड़ पर आक्रमण किया है । हमें आज उससे लोहा लेना है । तुम सुन चुकी हो कि तुरही सैनिकों को बुला रही है लेकिन मुझे तो तुमने छीन लिया है ।

[नेपथ्य में गान]

सैनिक, देख गगन की लाली !
निशा की अब छोड़ खुमारी
पकड़ प्रेम की प्याली प्यारी
पकड़ हाथ में तेग दुधारी
तुझे पुकार रही है काली !
सैनिक, देख गगन की लाली !
मृदु फूलों की सेज सजा दे
गलबाँही का हार हटा दे,
चढ़ घोड़े पर, एड़ लगा दे,
रच मुण्डों की माला, माली !
सैनिक, देख गगन की लाली !
जब नभ में उजियाला छाया
क्यों कुटिया में दीप जलाया,
रवि ने तुमको मार्ग दिखाया
तेरे पथ पर रोली डाली !
सैनिक देख गगन की लाली !

कुमार—तुम रही हो, श्यामा ! बाहर चारणी गा रही है। मुझे उसका आदेश मानना ही पड़ेगा। आशा है तुम मुझे रण-यात्रा पर उसी तरह मुस्कराती हुई उल्लसित हृदय में विदा दोगी जिस तरह राजपूतनियाँ देती हैं।

[गाते-गाते चारणी का प्रवेश]

श्यामा—तुम आ गई, चारणी ! तुम्हारा बस चले तो रक्त के महासमुद्र में सारे संसार को डुबा दो जिसमें केवल तुम्हारा त्रिशूल मस्तूल की तरह खड़ा दिखाई दे।

चारणी—श्यामा ! तुम मेरे लिए अपरिचित नहीं हो। तुम्हें जितना मैं जानती हूँ उतना शायद कुमार भी नहीं जानते। तुम इस बात से अनभिज्ञ नहीं हो कि लाल समुद्र में प्रेम का श्वेत कमल बहुत सुन्दर दिखाई देता है। शक्ति और स्नेह इन्हीं तानों-बानों से सृष्टि के पट का निर्माण हुआ है। तुम्हारे

अरमानों को संहार का आशीर्वाद मिलेगा या नहीं यह मैं नहीं जानती किन्तु इस बारात को अनुमोदन अवश्य मिलता रहेगा। मैं कुमार की आँखों में प्रेम का पानी और युद्ध की प्यास दोनों देखना चाहती हूँ। कुमार, तुम्हें रण-यात्रा पर प्रस्थान करने का समय याद है न ! तुम यह नहीं भूल गए हो !

कुमार—मुझे तुरन्त पहुँचना चाहिए। विलम्ब के लिए पिताजी से क्षमा माँग लूँगा।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—महाराणा रत्नसिंह का सैनिक-शिविर। महाराणा सैनिक-वेश में घूम रहे हैं।]

महाराणा—कितनी पीढ़ियों से मेवाड़ और मालवा का संघर्ष चला आ रहा है। स्वर्गीय पिता श्री महाराणा साँगा ने न केवल मालवा बल्कि गुजरात के बादशाह को भी मेवाड़ के झण्डे के आगे सिर झुकाने के लिए मजबूर किया था। ऐसी कौन-सी शक्ति थी जो मेवाड़ के आगे गर्व-पूर्ण दृष्टि से देख सकती? खानवा के युद्ध में एक राजपूत राजा के विश्वास-घात से स्वर्गीय पिताजी को जो पराजित होना पड़ा उससे दूसरे राज्यों को हमारी शक्ति पर अविश्वास करने का अवसर मिला। इसीलिए आज मालवा के सूबेदार ने चित्तौड़ की तरफ लालच-भरी आँखों से देखा है किन्तु, वह जान लेगा कि महाराणा संग्राम के पुत्र की तलवार उनसे कम तेज और कठोर नहीं है।

[मेवाड़ के सेनापति का प्रवेश]

सेनापति—(अभिवादन करके) सेना तैयार हो चुकी है।

महाराणा—तो फिर कूच का डंका क्यों नहीं बजा ?

सेनापति—युवराज की प्रतीक्षा है। सेना के अग्रभाग का संचालन उन्हें सौंपा गया है किन्तु वे अभी तक उपस्थित नहीं हुए।

महाराणा—बाप्पा रावल के वंशजों में आज तक ऐसा कोई कपूत पैदा नहीं हुआ जो रण-यात्रा पर जाने के समय देर से आया हो। कहीं कुमार शिकार को जाते समय शत्रुओं के घेरे में तो नहीं पड़ गए?

सेनापति—आशंका तो मुझे भी हुई थी। रात को आवश्यक परामर्श के लिए जब मैं उनके शिविर में गया तो उसे खाली पाया। मेरा हृदय धड़का। मैंने तुरन्त ही गुप्तचरों को भेजकर उनका पता लगवाया।

महाराणा—तो क्या वह रात-भर शिविर से गायब रहे? यह तो सैनिक-नियमों के विरुद्ध है सेनापति। मुझे विश्वास है कि राजकुमार जान-बूझकर सैनिक-नियमों की अवहेलना नहीं करेंगे। मेरा हृदय धड़कता है सेनापति! वह अवश्य ही किसी विपत्ति में फँस गए हैं।

सेनापति—नहीं महाराणा! वे किसी विपत्ति में नहीं फँसे। केवल थोड़ा रास्ता भूल गए हैं।

महाराणा—इसका मतलब?

सेनापति—मतलब यही कि रणचण्डी की उपासना के समय वे वासना के विलास-मन्दिर में दिल बहलाने गए हैं।

महाराणा—यह तुम क्या कहते हो? सेनापति सीसोदिया-वंश के किसी बालक के प्रति ऐसा लांछन लगाते समय तुम्हें डर नहीं लगा। यदि यह लांछन असत्य सिद्ध हुआ तो जानते हो इसका क्या दण्ड दिया जाएगा?

सेनापति—महाराणा! मेवाड़ का सेनापति भारत-गौरव सीसोदिया वंश की प्रतिष्ठा शक्ति भय और साहस की पूरी इज्जत रखकर ही कोई शब्द अपने मुँह से निकालता है। यदि मेरा कथन झूठा हो तो मुझे प्राण-दण्ड दिया जाए। जिस सौन्दर्य-मूर्ति की आराधना में कुमार ने कल रात व्यतीत की है उसे मैंने पकड़वाकर अभी बुलाया है। आप जान लेंगे कि मैं सत्य कहता हूँ या असत्य।

महाराणा—तुमको भ्रम हुआ होगा सेनापति! यदि यह बात सत्य हुई तो महाराणा संग्रामसिंह के पुत्र रत्नसिंह का न्याय-दण्ड अपने इकलौते बेटे,

मेवाड़ के भावी महाराणा के ऊपर भी उसी निर्ममता से प्रहार करेगा जिससे कि साधारण जन पर करता है।

[राजकुमार का प्रवेश]

सेनापति—लीजिए, ये राजकुमार आ गए। आप इनसे पूछ सकते हैं कि रात में कहाँ रहे और इस समय विलम्ब से क्यों आए ?

महाराणा—कहो कुमार, तुम्हारे पास इस बात का क्या उत्तर है ?

[कुमार चुप रहते हैं]

सेनापति—महाराणा ! इसका उत्तर कुमार अपने मुँह से देने में शायद लज्जा का अनुभव कर रहे हैं। मैं इस प्रश्न का जीवित उत्तर सामने उपस्थित करता हूँ। (जोर से कहता है) गम्भीरसिंह !

[श्यामा के साथ गम्भीरसिंह का प्रवेश]

राजकुमार—सेनापति तुम्हारा इतना साहस ! एक स्वतन्त्र नागरिक को इस प्रकार पकड़वाकर बुलाने की धृष्टता।

महाराणा—और कुमार रण-यात्रा के समय रमणी के रूप-जाल में फँसे रहने की बुद्धि तुम्हें किसने दी ! तुम्हारा क्या नाम है बेटी !

श्यामा—मुझे श्यामा के नाम से पुकारा जाता है।

महाराणा—यह कौन-सा कुल है जिसकी रूपवती पुत्री ने सीसोदिया कुल के एक नक्षत्र को अपनी छवि-अभ्र-माला से संसार की आँखों से आच्छन्न करने का प्रयत्न किया। तुम राजपूतनी हो !

[चारणी का प्रवेश]

चारणी—नहीं महाराणा ! यह भीमराज की कन्या श्यामा है।

सेनापति—तो श्यामा का अपराध असह्य है। एक हीन कुल की कन्या का इतना साहस !

महाराणा—अवश्य आज राजकुमार और श्यामा का भाग्य एक ही स्याही से लिखा जाएगा।

राजकुमार—पिताजी ! जहाँ तक मेरी आत्मा कहती है इस कुमारी ने कोई अपराध नहीं किया और मैंने भी इतना ही अपराध किया है कि नियत

समय से कुछ देर में मैं यहाँ पहुँच पाया हूँ। उसके लिए आप जो दण्ड दें वह स्वीकार करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।

महाराणा—कुमार, महाराणा तो अपनी प्रजा का आज्ञापालक सेवक है। आज प्रजा तुम दोनों को अपराधी मानती है। और मेरा न्याय-दण्ड कहता है कि तुम दोनों प्राण-दण्ड के भागी हो।

श्यामा—महाराणा! मैं राजा के न्याय-दण्ड को नहीं जानती मैं जाति और वंश की मर्यादाओं से भी अधिक परिचित नहीं मैं वन में पली और बड़ी हुई हूँ। वन में जो फूल मुझे अच्छा लगा है उसे मैंने तोड़ लिया है। कभी महाराणा का न्याय-दण्ड मेरे मार्ग में बाधक नहीं हुआ।

महाराणा—तुम क्या कहती हो श्यामा?

चारणी—महाराणा क्षमा कीजिए मैं बीच में बोलने का दुस्साहस कर रही हूँ। अभी तक चारण और चारणी वीर पुरुषों के गुण गाने और सैनिकों को मरने-मारने के लिए उत्तेजित करना ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते रहे हैं। किन्तु हमारे भी हृदय है और मनुष्य के हृदय को समझने का थोड़ा-सा ज्ञान हमें मिला है। निश्चय ही श्यामा से भूल हुई है और राजकुमार से भी किन्तु भूल क्या हुई है इस विषय में संसार को भ्रम न रहे ऐसा उपाय होना चाहिए। सेनापति! आप बता सकते हैं कि श्यामा से क्या भूल हुई है और राजकुमार ने क्या अपराध किया है?

सेनापति—श्यामा से यह भूल हुई है कि उसने हीन कुल में जन्म लेकर भी राजपूतों के उच्चतम वंश के साथ स्नेह-सूत्र बाँधने का प्रयत्न किया है। और राजकुमार से यह अपराध हुआ है कि उन्होंने अपने कुल के गौरव और उच्चता को एक हीन कुल की युवती के चरणों पर चढ़ा दिया।

चारणी—यही तो भ्रम है। आप भूलते हैं सेनापति और महाराणा आप अपराधी को दण्ड देने तो चले हैं लेकिन आपको यह पता नहीं है कि इसका वास्तविक अपराध क्या है। न्याय-आसन पर बैठते समय आप न महाराणा हैं न आपका किसी उच्च कुल में जन्म हुआ है। न्याय-मन्दिर का देवता एक निरपेक्ष निर्विकार, जाति-कुल-हीन ममता-माया के आवरण से मुक्त मन

अपयश के परे रहने वाला मनुष्य है। महाराणा यदि आप इस समय इन दोनों को दण्ड देंगे तो संसार यही समझेगा कि मनुष्य का मनुष्य से प्रेम करना पाप है। मैं नहीं जानती कि एक राजपूत का एक भीलनी से प्रेम करना कोई अपराध है और एक भीलनी का एक राजपूत के साथ स्नेह-सम्बन्ध जोड़ना दुस्साहस है। हमने नीच और ऊँच की भावनाएँ प्राणों में पालकर अपने देश को सैकड़ों टुकड़ों में बाँट दिया है। मैं आपसे पूछती हूँ यदि भीलों को आप अपने समान अधिकार देने को प्रस्तुत नहीं तो क्यों वे निरन्तर अपमान के बाद प्राणों पर खेलने के लिए मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए अपने प्राणों की बलि दें ? क्यों हजारों की संख्या में वे आपकी सेना में भरती हों ? महाराणा केवल वंश की उच्चता के दम्भ को राजी करने के लिए इन दो प्राणों की बलि चढ़ाने की आवश्यकता नहीं। मैं आज आपसे भीख माँगने आई हूँ। वंशाभिमान के विरुद्ध प्रेम की अर्जी पेश करने आई हूँ। महाराणा ! श्यामा और राजकुमार को विवाह करने का अधिकार मिलना चाहिए।

महाराणा—तुम ठीक कहती हो चारणी ! सेनापति ! जाओ आज रण बाजा स्थगित रखो। आज मेवाड़ के युवराज का भीलराज की कन्या से विवाह होगा।

सेनापति—आपकी आज्ञा सिर आँखों पर, किन्तु सैनिक अनुशासन भी आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहता है। ऐसा जान पड़ता है कि न्यायाधीश पर पिता ने विजय पा ली है।

महाराणा—नहीं सेनापति। तुम भूल करते हो। न्यायाधीश अपना कार्य करेगा किन्तु उसके सामने प्रेम की जो अर्जी आई थी उसका पिता के रूप में नहीं न्यायकर्त्ता के रूप में मैंने फैसला सुनाया है और सैनिक अनुशासन की अर्जी का फैसला कल सुनाया जाएगा। अच्छा अब हम लोग विदा होते हैं।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—सैनिक-शिविर के पास काली का मन्दिर। राजकुमार और श्यामा का एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए प्रवेश।]

कुमार—श्यामा पानी के दो बुलबुलों की तरह हमारा-तुम्हारा मिलन है। संसार के महा समुद्र में दो दिशाओं से दो बुलबुले उठे। एक-दूसरे की तरफ बढ़े—और एक होकर अब दो नहीं हो सकते।

श्यामा—किन्तु अभी तक महाराणा के न्याय की तलवार हमारे सिर पर लटक रही है।

कुमार—मेवाड़ का न्याय-दण्ड बहुत कठोर है। आज महाराणा क्या फैसला करेंगे यह मैं पहले से ही जानता हूँ।

श्यामा—हम इस संसार में भूल से ही आ गए। हमारी वीणा के स्वर संसार के कोलाहल में नहीं मिल सके। हम यहाँ के राज-नियमों से विरोध करके अपनी स्वासों को सुरक्षित नहीं रख सकते।

[नेपथ्य में गान]

किसने साथी को पहचाना।

जो बादल बरसाते पानी
जिससे प्यासी भूमि बचाती
वे भी बन जाते तूफानी
सब कहते हैं वज्र गिराना।
किसने साथी को पहचाना।

यह प्रशान्त सागर सोता है
किन्तु, अशान्त कभी होता है,
यह जहाज जीवन खोता है
लहरें हैं यम का मुसकाना।
किसने साथी को पहचाना।

नभ की यह सिन्दूरी रेखा,
लिखती निशि में काला लेखा,
जग ने जब अपना जग देखा
छिपा हँसी में अश्रु निराला।
किसने भाभी को पहचाना!

श्यामा—चारणी बहन आ रही है! चारणियों के दिल में भी प्रेम की हिमायत करने की भावना है, यह पहली बार ही देखने में आया। यह जो पूर्णिमा से भी अधिक उज्ज्वल शराब से भी अधिक उन्मादक और अमृत से भी अधिक जीवन-दायिनी रात्रि हमें प्राप्त हुई है इसका श्रेय चारणी बहन को ही है। हमारा प्रेम जो अन्धकार में मुँह छिपाकर सिसक रहा था वह उषा के सुहाग भरे प्रकाश में खुलकर आ सका है।

[गाते-गाते चारणी का प्रवेश]

चारणी—किसने भाभी को पहचाना। चारणी का प्रेम के दीवानों को सम्पूर्ण हृदय से आशीर्वाद।

श्यामा और कुमार—आदरणीया चारणी के चरणों में हमारा प्रणाम।

चारणी—श्यामा! तुम मेवाड़ के भाग्याकाश में विभास की तारिका बन कर आई हो। तुम जितनी सुन्दर हो तुम्हारी आशा भी उतनी ही ज्यादा है। युग-युग के अन्ध-विश्वासों को लात मारकर, वंश-मर्यादा की अवहेलना करके, महाराणा ने अपने हाथ से एक भीलनी की ओढ़नी से राजकुमार के उत्तरीय का छोर बाँध दिया है यह एक साधारण-सी घटना नहीं है। आज जिस वर्ग-भाव का सर्प भीतर-ही-भीतर फुफकार रहा है उसके विष से श्यामा का सुहाग कितने दिन तक अम्लान रह सकता है यह विधाता के सिवाय कोई नहीं जानता।

श्यामा—बहन, मेरा जीवन तब प्रारम्भ हुआ था जब कि मैंने पहली बार कुमार को देखा था। मेरे जीवन की जवानी तब आई थी जब कि हमारा गठ-बन्धन हुआ था और मेरा जीवन तब समाप्त हो गया जब कि हमारी साँसें एक-दूसरे को छूने लगीं। अब श्यामा समाप्त हो चुकी जो कुछ शेष है वह कुमार

की छाया है। श्यामा तो एक प्रलय का झोंका लेकर आई थी और उस झोंके से राजमहलों का अभिमान हिलाकर चले जाने में ही उसकी स्वाभाविकता है। एक क्षण के लिए भी मुझे संसार ने बाप्पा रावल के वंशज की अर्धांगिनी माना है अपने इस विश्वासोल्लास के प्रकाश में जीवन की शेष अँधेरी रातें मैं सन्तोष के साथ व्यतीत कर दूँगी।

[महाराणा और सेनापति का प्रवेश। श्यामा और राजकुमार महाराणा के चरण छूते हैं।]

महाराणा—यशस्वी हो बेटा। तुम्हारी कीर्ति अमर हो श्यामा! न्याय शीघ्र करने के पहले पिता का वात्सल्य हृदय अपने पुत्र और पुत्रवधू को अपने हृदय के सम्पूर्ण बल से आशीर्वाद देता है। मेवाड़ के इतिहास में तुम दोनों नक्षत्रों के समान चमकोगे। अच्छा! अब तुम दोनों की पेशी मेवाड़ के महाराणा की अदालत में होगी। सेनापति! बोलिए राजकुमार के विरुद्ध तुम्हारा क्या अभियोग है?

सेनापति—महाराणा! वह क्षणिक ज्वार था। मेरा राजकुमार के विरुद्ध कोई अभियोग नहीं। जिस हृदय में नव सुहाग का प्रकाश हुआ है—वहाँ मैं शोक का अन्धकार नहीं फैलाना चाहता। जहाँ पर नव आनन्द की भैरवी बजी है, वहाँ वेदना का विहाग नहीं छिड़वाना चाहता। जो होना था हो चुका मुझे जो भ्रम था दूर हो चुका। मैं कुमार से अपनी धृष्टता की क्षमा चाहता हूँ।

चारणी—किन्तु देश ने अभी तक अपना अभियोग वापस नहीं लिया। वंश और जाति का श्यामा के विरुद्ध अभियोग था उसका फैसला श्यामा के पक्ष में हो चुका है और वह उसका पुरस्कार पा चुकी है। किन्तु जाति और वंश से भी बड़ी चीज हमारी जन्म-भूमि है और उस जन्म-भूमि का युवराज के विरुद्ध यह अभियोग है कि उसने प्रेम को कर्तव्य से ऊँचा स्थान दिया है उसने प्रेयसी को जन्म भूमि से ऊँचा माना है रण-यात्रा पर निश्चित समय पर आने में विलम्ब किया है। महाराणा देश-द्रोही को जो दण्ड दिया जाता है क्या कुमार उसके भागी नहीं?

महाराणा—अवश्य ! क्यों कुमार तुम इस अभियोग को असत्य सिद्ध कर सकते हो ? तुम्हारा जो मुख्य गवाह था वह तुम्हारे विरुद्ध हो गया है।

कुमार—मेरा गवाह पक्ष और विपक्ष की सीमाओं के परे है। उसने सत्य को सामने रख दिया है और अपराधी दण्ड सहने के लिए प्रस्तुत है।

महाराणा—तो फिर मैं तुम्हें प्राण-दण्ड की आज्ञा देता हूँ। कांपते क्यों हो सेनापति तुम्हें आश्चर्य होता है कि एक पिता के मुँह से अपने पुत्र के लिए प्राण-दण्ड की आज्ञा कैसे निकल सकी ?

सेनापति—हाँ ! महाराणा यह आश्चर्य की बात है ही। युवराज मेवाड़ के भावी महाराणा हैं। और महाराणा के दूसरा और कोई पुत्र भी नहीं है। युवराज ने आपके साथ और मेरे साथ रहकर क्षत्रियत्व का पूर्ण तेज अनेक युद्धों में प्रकट किया है। आप अपने भाई विक्रमाजीत और उदयसिंह को भी जानते हैं। आपके अनुज विक्रमाजीत वासना के पुजारी हैं और उदयसिंह शिशु। उनके हाथों में मेवाड़ का भविष्य उज्ज्वल न रह सकेगा। देश के आशा-केन्द्र युवराज के प्राणों की भिक्षा मेवाड़ का सेनापति महाराणा से माँगता है। मेवाड़ के महाराणा की ओर से न्यायाधीश महाराणा के आगे अनुरोध करता हूँ कि कुमार को क्षमा किया जाए। मैं नव विवाहिता श्यामा की ओर से उसके सुहाग की भीख माँगता हूँ।

महाराणा—न्यायाधीश ! मेवाड़ के सेनापति मेवाड़ के महाराणा और नव-विवाहिता नारी के अनुरोध को न्याय के विरुद्ध जाने के लिए उपयुक्त कारण नहीं समझता। मेरी आज्ञा का पालन होना ही चाहिए। भविष्य में मेवाड़ का प्रत्येक मनुष्य जान ले कि देश की स्वाधीनता के लिए जिसकी पुकार हो उसी समय उसे आना पड़ेगा नहीं तो उसे यही दण्ड भोगना पड़ेगा जो कि मेवाड़ के युवराज ने हँसते-हँसते स्वीकार किया है। कहो राजकुमार, तुम मरने के लिए प्रस्तुत हो ?

राजकुमार—यह मेरा सौभाग्य है।

महाराणा—तुम काली की मूर्ति के सामने खड़े हो जाओ।

[कुमार मूर्ति के सामने जाकर खड़े होते हैं। श्यामा भी उनकी बगल में

जाकर खड़ी होती है।]

वारुणी—श्यामा तुम कहाँ जाती हो ! महाराणा ने केवल राजकुमार की मृत्यु की आज्ञा दी है। तुम्हें अभी इस दुनिया में ही रहना होगा। वीर पुरुषों की उनके तीर के निशाने की तरह सुहाग रात भी व्यर्थ नहीं जा सकती। मेवाड़ का न्याय-दण्ड आज दीन-हीन प्राणों का भूखा नहीं है। तुम्हें मृत्यु के पथ पर कुमार को अकेला ही जाने देना पड़ेगा। मनुष्य का फैसला चाहे हम न मानें किन्तु विधाता के न्याय-विधान के विरुद्ध कुछ भी करने का हमें अधिकार नहीं है।

[श्यामा की आँखों में आँसू आते हैं]

वारुणी—अभी तुम हँसती थीं ! राजकुमार को प्राणों का दण्ड सुनाया गया, तब भी तुम्हारी आँखों की बिजली जरा भी मन्द नहीं हुई थी। अब आँखों के बादल बरसने क्यों लगे ?

श्यामा—विधाता का न्याय-मन्दिर मनुष्य के न्याय-मन्दिर से भी अधिक निष्ठुर और कठोर है।

महाराणा—सेनापति यह लो मेरी तलवार।

[सेनापति को तलवार देता है]

महाराणा—कुमार काली के आगे अपना मस्तक झुकाओ। भवानी की प्यासी जीभ तुम्हारा खून माँग रही है।

[कुमार भवानी के आगे अपना सिर झुकाते हैं। श्यामा चीत्कार करके वारुणी के चरणों में गिर जाती है।]

महाराणा—सेनापति ! बढ़ो और देवी के चरणों में यह बलि चढ़ा दो। इतनी बहुमूल्य बलि चढ़ाने का सौभाग्य आज तुम्हें मिल रहा है। आज तुम्हारे जैसा भाग्यवान कौन होगा ? जाओ मेरी आज्ञा का पालन करो।

सेनापति—महाराणा ! ऐसा निष्ठुर कार्य…

महाराणा—सेनापति ! अनुशासन भंग करने का दण्ड तुम जानते हो।

[सेनापति कुमार के पास पहुँचते हैं और तलवार उठाते हैं]

[पटाक्षेप]

पश्चात्ताप

पात्र-सूची

कन्हैया

मद्योद्धार में लगा हुआ एक कुलीन युवक।

पंचकौड़ीदास

एक साधारण वैद्य।

डॉक्टर

एक ईसाई डॉक्टर जो पहले भंगी था।

रामकुमारी

वैद्यजी की पत्नी।

रधिया

एक अछूत कन्या।

रधिया की माँ वैद्यजी के साथी कन्हैया से पढ़ने वाले अछूत विद्यार्थी

पहला दृश्य

[एक गाँव के छोटे-से मन्दिर की सीढ़ियाँ। मन्दिर के अन्दर घण्टे झाँझर और शंख आदि के बजने की आवाज हो रही है। आरती भी गाई जा रही है—लेकिन दूसरी आवाजों में मिलकर वह साफ सुनाई नहीं देती। एक १२-१३ वर्ष की लड़की मन्दिर की सबसे निचली सीढ़ी पर बैठी हुई ध्यान लगाकर मन्दिर में से आने वाली आवाजों को सुन रही है। लड़की सुन्दर भी है भोली भी है और साफ-सुथरी भी। कपड़े बड़े साधारण हैं, कहीं-कहीं फटे भी हैं, लेकिन मैले नहीं। चेहरे पर समझदारी की झलक है—ऐसा जान पड़ता है जैसे यह कुछ पढ़ी-लिखी भी है। लड़की का नाम है रधिया। रधिया कुछ सोच में डूबी-सी बैठी है कि उसी गाँव में अभी-अभी नया आया हुआ युवक—कन्हैया आता है। उसके हाथ में कुछ फूल हैं। रधिया का ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता। लड़का ठीक उसके पीछे खड़ा होकर उसके सिर पर कुछ फूल फेंक देता है। रधिया चौंककर पास में पड़े एक पत्थर को उठाती है और खड़ी होकर उस फूल फेंकने वाले को मारना चाहती है कि कन्हैया को देखकर शर्मा जाती है।]

कन्हैया—फूल के बदले पत्थर देती हो रधिया !

रधिया—देवता पर चढ़ाए जाने वाले फूल तुमने मुझ पर क्यों फेंके ?

कन्हैया—इसलिए कि तुम देवी हो। मनुष्य ही तो सच्चा देवता होता है रधिया ! जो मनुष्य की पूजा नहीं करता वह भगवान् की पूजा कैसे कर सकता है।

रधिया—मनुष्य की पूजा करने से देवता नाराज होते हैं।

कन्हैया—सो क्यों ?

रधिया—मेरे हिस्से की मिठाई यदि तुम खा जाओ तो क्या मुझे क्रोध न आएगा ?

कन्हैया—तुम्हारी माँ का हिस्सा भी तुम्हें दे दिया जाए तो तुम्हारी माँ प्रसन्न होगी ना ? मनुष्य भी तो भगवान् की सन्तान है—जो उसकी सन्तान की पूजा करता है उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। अब जाऊँ भगवान् की आरती में भी शामिल हो लूँ।

[कन्हैया जाता है और रधिया की माँ आती है। उसके हाथ में डलिया और झाड़ू है।]

रधिया की माँ—अरी रधिया तू यहाँ क्या कर रही है अभी तक झाड़ू ही नहीं लगाई सड़क पर। अरी पुजारीजी नाराज हो जाएँगे और भगवान् के भोग में से हमें कुछ नहीं देंगे।

रधिया—जरा भगवान् की आरती सुनने लगी थी फिर—कन्हैया भैया आ गए उनसे बातें करने लगी।

रधिया की माँ—बेटी हमारे लिए तो लोगों की सेवा करना ही भगवान् की पूजा है। चल झाड़ू लगा।

रधिया—नहीं माँ आज मैं भगवान् के दर्शन करूँगी।

रधिया की माँ—मैं तुझे कितनी बार समझा चुकी हूँ कि हमारी मन्दिर के भीतर जाकर भगवान् के दर्शन करने की औकात नहीं है।

रधिया—क्यों क्या हम मनुष्य नहीं हैं ?

रधिया की माँ—मनुष्य तो हैं लेकिन नीच जात हैं—ऊँची जातवालों का बराबरी हम कैसे कर सकते हैं ?

रधिया—लेकिन कन्हैया बाबा तो कहते हैं कि जो सेवा करते हैं वे ऊँचे आदमी होते हैं—हम सब लोगों की सेवा करते हैं—जैसे माँ बच्चे की सेवा करती है—फिर हम नीच कैसे हुए ? हम मन्दिर में भगवान् के दर्शन के लिए क्यों नहीं जा सकते ?

रधिया की माँ—हमारे मन्दिर में जाने से मन्दिर अपवित्र हो जाता है बेटी ! हम गन्दे काम जो करते हैं—गन्दे जो रहते हैं।

[वैद्यराज पंचकौड़ीदास आते हैं और सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मन्दिर से आते हैं। वे एक मैली धोती पहने हैं जो आधी ये पहने हुए हैं और आधी लपेटे

पर जाते हुए हैं। बदन उघाड़ा है। एक मैला और मोटा कपड़ा पहने हुए हैं। उनके एक हाथ में फूलों से भरा एक डोना है दूसरे हाथ में जल-भरा लोटा। पंचकौड़ीदास रधिया की माँ और रधिया दोनों पर दृष्टि फेंककर मन्दिर में घुस जाते हैं।]

रधिया—माँ हम ऐसे पण्डितों से तो अधिक स्वच्छ हैं। वे मन्दिर में जा सकते हैं तो हम क्यों नहीं?

रधिया की माँ—बड़ी जात वाले गन्दे रहकर भी पवित्र गिने जाते हैं। बेटा यह सब कर्मों का फल है। हमने बुरे कार्य जो किए थे इसलिए नीची बने हैं—इन्होंने अच्छे कार्य किए थे इसलिए ये बामन हुए।

रधिया—झूठी बात। यह व्यवस्था इन्हीं की बनाई हुई है। यह इनका अत्याचार है और हमारी बेसमझी। जैसे माँ सब बच्चों को बराबर प्यार करती है—वैसे ही भगवान् भी। क्या हम भगवान् की सन्तान नहीं हैं क्या हममें भक्ति-भाव नहीं? क्या हम मनुष्य नहीं?

रधिया की माँ—हैं क्यों नहीं। लेकिन भगवान् की आज्ञा भी तो हमें माननी होगी। पंचों की आज्ञा ही भगवान् की आज्ञा है चलो बेटी हम अपना काम करें।

रधिया—ऊँ—हूँ—मैं तो आज मन्दिर में जाऊँगी।

[एक सीढ़ी चढ़ती है कि ऊपर शोर सुनाई देता है। पंचकौड़ीदास कन्हैया को धक्के मारता हुआ बाहर ला रहा है।]

पंचकौड़ीदास—तुम गाँधी के चेलों ने धर्म-कर्म को नष्ट करने की ठान ली है। कम्बख्त रोज भंगियों के मोहल्लों में पढ़ाने जाता है और भगवान् के मन्दिर में घुस आया। जाओ निकल जाओ फिर कभी मन्दिर की सीढ़ी पर पैर रखा तो सिर फोड़ दूँगा। यह धर्म का मामला है इसमें हम रियायत नहीं कर सकते।

[ज़ोर से धक्के देते हैं। कन्हैया सीढ़ियों पर से लुढ़क जाता है—उसके सिर में चोट आती है। रधिया और रधिया की माँ उसे सँभालती हैं। रधिया अपनी चुन्नी फाड़कर चोट पर पट्टी बाँधती है।]

रधिया—भैया तुम्हें हमारे कारण बहुत कष्ट मिला।

रधिया की माँ—मैं तो तुमसे पहले ही कहती थी कि हमारे मोहल्ले में मत आया करो। इसे ऊँची जात वाले कभी सहन नहीं करेंगे।

कन्हैया—ये लोग अभी समझते नहीं हैं—एक दिन समझ जाएँगे।

रधिया—हम लोग इनका काम छोड़ दें तो एक दिन में इनकी बुद्धि ठिकाने आ जाए।

कन्हैया—नहीं रधिया हम सेवा और प्रेम से ही इन भाइयों को रास्ते पर लाएँगे (उठकर खड़ा हो जाता है) अब मैं ठीक हूँ तुम अपना काम करो।

[कन्हैया चला जाता है। एक भक्त मन्दिर से बाहर निकलता है। उसके हाथ में एक दोना है जिसमें कुछ प्रसाद है जिसे वह खाता आ रहा है सीढ़ियों से नीचे आकर वह जूठन रधिया को देता है—लेकिन रधिया लेती नहीं, मुँह फेरकर खड़ी हो जाती है।]

रधिया की माँ—ले ले, बेटी! भगवान् का प्रसाद है।

रधिया—जूठन खाने से हैजा हो जाता है, माँ। आजकल हैजा फैल भी रहा है।

रधिया की माँ—भगवान् के प्रसाद का अपमान नहीं करते बेटी!

[दोना माँ ले लेती है। भक्तजी चले जाते हैं]

रधिया—(माँ के हाथ से दोना छीनकर फेंकते हुए) जो हमें नीच समझते हैं उनकी जूठन खाने की हमें क्या जरूरत? चलो माँ यहाँ से चलो।

रधिया की माँ—काम तो कर लें। (झाड़ू लगाने लगती है। रधिया रोष में भरी चली जाती है।)

[मन्दिर में से भजन के गाने का शब्द आता है]

[नेपथ्य में गान]

प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो।
समदरशी है नाम तिहारो चाहो तो पार करो।
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुण-अवगुण नहिं चितवे कंचन करत खरो।

[झाड़ू लगाते-लगाते रधिया की माँ ओझल हो जाती है]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[वैद्यराज पंचकौड़ीदास एक बगिया में गाँव के कुछ मित्रों के साथ बैठे हुए हैं। एक व्यक्ति सिल पर भंग घोट रहा है। भंग का सभी सामान मौजूद है।]

भंग घोटने वाला—वैद्यजी आपकी वैद्यकी में भंग के भी गुण दिए होंगे ना?

पंचकौड़ीदास—हाँ-हाँ क्यों नहीं। हमारे आयुर्वेद में हरेक फूल-पत्ती फल मूल के गुण-दोष दिए हैं। अरे भैया जहाँ तक हमारी देसी चिकित्सा-विधि की पहुँच है वहाँ तक तो अंग्रेजी डॉक्टरी अभी हजार बरस नहीं पहुँच सकती।

एक साथी—लेकिन आजकल सब लोग दौड़-दौड़कर डॉक्टरों के पास ही जाते हैं।

पंचकौड़ीदास—कुछ नहीं यह पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव है। दो ही अक्षर अंग्रेजी के पढ़ गए तो अपने बड़े-बूढ़ों की देसी वस्तुओं को देसी रीति रिवाजों को निकम्मा और हीन समझने लगे।

दूसरा साथी—हाँ पश्चिम की हरेक वस्तु आराध्य बन गई है। फैशन है—फैशन वैद्यजी!

भंग घोटने वाला—लेकिन वैद्यजी भंग के गुण तो आपने बताए ही नहीं।

पंचकौड़ीदास—भंग क्या है? वास्तव में यही तो आर्य ऋषियों का सोम-रस था। एक प्याले में स्वर्ग की सैर कर सकते हो। वैद्यक के अनुसार देखो तो कफ को यह दूर करे, बल बढ़ाए, बुद्धि बढ़ाए और भूख बढ़ाए।

दूसरा साथी—भूख वाली बात तो हितकर नहीं है। इस राशन के युग में भूख बढ़ना अत्यन्त दोषपूर्ण है।

[सब हँसते हैं। पंचकौड़ीदास की पत्नी रामदुलारी आती है]

रामदुलारी—यहाँ तुम्हारी भंग घुट रही है वहाँ बच्चा का हाल खराब है।

पंचकौड़ीदास—अरे, तुम कब आओगी—कोई बला लेकर आओगी। सारा मजा किरकिरा कर दिया।

रामदुलारी—रहने दो अपना यह भजन ! अब देखो भिखमंगों को बिठाकर भंग घोटते हो । शर्म नहीं आती । अपने बाल-बच्चों की भी चिन्ता नहीं ।

एक साथी—क्या हुआ भाभीजी !

रामदुलारी—हुआ क्या, अपना सिर ! मेरा भाग्य ही फूटा है जो इनके घर आई ।

पंचकौड़ीदास—हाँ-हाँ नहीं तो कोई अच्छा सेठ तुम्हें मिल जाता ।

रामदुलारी—तुमने बड़ा नौलखा हार पहना दिया है मुझे । अब यह बताओ घर चलते हो या नहीं भंग की तरंग में पड़े रहोगे ?

पंचकौड़ीदास—बस—एक गिलास चढ़ाकर अभी आया ।

भंग घोटने वाला—हाँ भाभी अब तैयार ही समझो ।

दूसरा साथी—हुआ क्या है बच्चा को ?

पंचकौड़ीदास—अरे कुछ नहीं मामूली बात है आज ही एक दो कै आ गई तो इन्हें शक हो गया । औरत की जात ठहरी—जल्दी घबरा जाती है ।

पहला साथी—नहीं वैद्यजी इनका घबराना ठीक है । आजकल कुछ हैजे की भी शिकायत सुनी जाती है ।

पंचकौड़ीदास—लेकिन मैं ठीक दवा दे आया हूँ । आयुर्वेद में सभी बीमारियों का इलाज है । हैजे की दवा तो मेरी रामबाण है । हाँ—सचमुच—मेरे नुस्खे लेकर ही तो बड़े बड़े वैद्यों ने अपनी दवाएँ तैयार की हैं ।

दूसरा साथी—हाँ वैद्यजी ! आपकी तुलना कौन कर सकता है । यहाँ गाँव में पड़े हैं—शहर में होते तो लोग सिर आँखों पर रखते । हवेलियाँ बन जातीं हवेलियाँ ।

[एक १३ १४ साल की लड़की आती है । घबराई हुई जान पड़ती है ।]

लड़की—मैया ने फिर कै कर दी । सब कपड़े भी खराब कर डाले हैं ।

पंचकौड़ीदास—सचमुच तबियत ज्यादा खराब जान पड़ती है । (एक साथी से) ऐसा करो भैया अभी दौड़कर शहर जाओ और वहाँ से किसी योग्य डॉक्टर को लेकर आओ ।

भंग घोटने वाला—लेकिन वैद्यजी उलटे बाँस बरेली को

जरूरत है ? आपके रहते डॉक्टर की क्या जरूरत ? भला आपसे अधिक वह क्या कर सकेगा ?

पंचकौड़ीदास—एक से दो अच्छे होते हैं, भैया ! वैसे तो मुझे अपनी चिकित्सा पर भरोसा है फिर भी तुम जानते हो ऐसे समय पर बुद्धि भी काम नहीं देती । (पत्नी से) चलो लल्लू के कपड़े बदल डालो और देखो घबराओ मत—भगवान् सब ठीक करेगा ।

एक साथ—हाँ भाभी मैं अभी डॉक्टर को लेकर आता हूँ ।

[सब जाते हैं]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[एक खुले मैदान में कन्हैया कुछ अनपढ़ रहे जानेवाले लोगों को पढ़ा रहा है । पढ़ने वालों में बालक-बालिकाएँ भी हैं—युवक-युवतियाँ भी हैं एक-दो वृद्ध महाशय भी हैं ।]

एक बूढ़ा—भैया हमारे साथ आप क्यों माथा-पच्ची करते हैं—कहीं बूढ़े तोते भी पढ़े हैं ?

कन्हैया—क्यों नहीं बाबाजी फारसी के एक बहुत बड़े कवि हुए हैं शेख-सादी उन्होंने चालीस वर्ष की अवस्था के बाद पढ़ना शुरू किया था । इसी तरह संस्कृत के महाकवि कालिदास ने भी बचपन में कुछ नहीं पढ़ा था । विद्या पढ़ने के लिए कोई भी अवस्था ठीक है ।

एक लड़का—(स्लेट दिखाता हुआ) मास्टरजी यह सवाल नहीं आता ।

कन्हैया—(स्लेट हाथ में लेकर देखकर) अरे यह क्या किया है २ और २ कितने होते हैं ?

लड़का—जी चार ।

कन्हैया—यहाँ पाँच क्यों लिखे हैं ? तुम ध्यान नहीं देते। जाओ सवाल को फिर करो। (लड़का चला जाता है।)

दूसरा लड़का—मास्टरजी मैं कल से पढ़ने नहीं आऊँगा।

कन्हैया—क्यों जसीला ?

जसीला—अम्मा कहती थी कि गाँव वाले कहते हैं कि अगर तुम लोग मास्टर कन्हैयालाल से कोई सरोकार रखोगे, उनसे बच्चों को पढ़वाओगे तो गाँव से निकाल दिए जाओगे।

एक बूढ़ा—हाँ ऐसी चर्चा गाँव में है सही। वे कहते हैं कि पढ़ लिखकर ये कमीने लोग हमारी बराबरी करेंगे।

कन्हैया—हाँ बाबाजी ये लोग मुझे भी डराते-धमकाते हैं। जान से मार देने की भी धमकी देते हैं।

दूसरा बूढ़ा—फिर भैया तुम क्यों हमारे पीछे अपनी जान जोखम में डालते हो ?

कन्हैया—ऊँच जात में पैदा होने के पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। संसार में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। विद्या प्राप्त करने का सबको अधिकार है। और सबके साथ एक-सा बर्ताव होना चाहिए। आप सबको समाज में बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए। आपको इसकी माँग करनी चाहिए, उसके लिए लड़ना चाहिए।

एक बूढ़ा—जान पड़ता है तुम हमारी आजीविका छिनवाओगे।

[हँसता है]

कन्हैया—ऐसे डरने से काम नहीं चलेगा। जो काम करने का किसी का भी साहस नहीं होता—सबको घिन आती है—ऐसा कठिन काम आप लोग करते हैं। सफाई न हो तो इन ऊँची जात वालों का जीवित रहना भी कठिन हो जाए। इसके बदले में ये क्या देते हैं तुम्हें—बड़ा उपकार दिखाते हैं, चार आने—आठ आने महीने और जूठी रोटियों के टुकड़े ! नहीं बाबा, तुम्हें इस अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन उठाना चाहिए।

रविया—(कन्हैया के पास आकर) मास्टरजी मैंने एक कविता लिखी है।

(कागज कन्हैया की तरफ बढ़ाती है।)

कन्हैया—तुम्हीं सुनाओ! गाकर। आजकल तुम खूब अच्छा लिखती हो।

रधिया—(गाकर कविता सुनाती है)

देखते सब जिन्दगी को, कौन उसको परखता है?

जन्म पाया है मुसीबत
में, मुसीबत में मिटेंगे।
खून अपना पी रहे हैं
खून अपना ही पियेंगे।
हैं हजारों घाव दिल में
हम उन्हें कब तक सिएँगे।

देखने तस्वीर दिल की कौन दिल में झाँकता है।
देखते सब जिन्दगी को कौन उसको परखता है।।

कन्हैया—वाह रधिया! तुमने तो कमाल कर दिया और सुनाओ।

बत्तियाँ हम विश्व-दीपक
की बने जलते रहेंगे।
आग में पलते रहे हैं
आग में पलते रहेंगे।
खाक होने जा रहे पर
आँख में खलते रहेंगे।

स्वर्ग का मालिक गरीबों को नरक में झोंकता है।
देखते सब जिन्दगी को कौन उसको परखता है।।

सीखता जीवन हमारा
सीखता करते रहेंगे।
नाश में पैदा हुए हैं
नाश में मरते रहेंगे।

लाल आँखें पुण्य की हम
देखकर डरते रहेंगे।
दोष दिखलाते सभी पर कौन उनको ढाँकता है।
देखते सब जिन्दगी को कौन उसको आँकता है॥
देश को आज़ाद करने
चल पड़े बेटा हमारे।
स्वर्ग-भू पर आ रहा है
हँस पड़े नभ के सितारे।
जल पड़े अम्बु हुआ मैं
आ रही नैया किनारे।
कौन इन कच्चे घरों की बात आकर आँकता है।
देखते सब जिन्दगी को, कौन उसको आँकता है॥

कन्हैया—वाह खूब कितनी प्रशंसा की आप लोगों। कहो बाबाजी, कितना अच्छा लिखा है रधिया ने। कौन कहता है कि आप लोगों में बुद्धि नहीं होती। अवसर मिले तो आप लोग बड़े-बड़े काम कर सकते हैं। अच्छा अब आज हमारा स्कूल खत्म होता है।

[सब उठकर चले जाते हैं]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[पंचकौड़ीलाल के मकान के बाहर। रधिया की माँ बदहवास-सी आती है।]

रधिया की माँ—(पुकारती है) वैद्यजी महाराज। वैद्यजी महाराज।

[अन्दर से पंचकौड़ीलाल और डॉक्टर नवनीतराय बाहर निकलते हैं।]

पंचकौड़ीदास—महाराज, बच्चे की दशा कैसी है ?

डॉक्टर—मैंने इंजेक्शन लगा दिया है बच्चा बच जाएगा। चिन्ता न कीजिए।

पंचकौड़ीदास—परमात्मा आपको सुखी रखे।

डॉक्टर—अच्छा देखो। दवाई में जितना पानी मैंने मिलाया है उससे अधिक न मिलाइएगा।

रधिया की माँ—बैदजी, मुझ पर कृपा करो। मेरी रधिया को हैजा हो गया है।

पंचकौड़ीदास—हैजा हो गया है तो दवा ले जा।

रधिया की माँ—जरा देख लेते तो।

पंचकौड़ीदास—मुझे भी कन्हैया की तरह भ्रष्ट समझ लिया है तूने। अरे ब्राह्मण का बेटा भंगी के घर कैसे जाएगा ?

रधिया की माँ—एक जान का सवाल है। मैं आपके पैरों पड़ती हूँ।

[पैरों पर गिरना चाहती है। पंचकौड़ीदास चौंककर दूर हो जाते हैं]

डॉक्टर नवनीतराय—(जो अभी तक चुपचाप इस घटना को देख रहे थे—अब मुस्कराते हुए बोलते हैं) क्या बात है वैद्यजी ऐसे चौंके क्यों ? क्या साँप काटने आता है ?

पंचकौड़ीदास—अभी नहाना पड़ जाता। इन लोगों ने धर्म-कर्म सब छोड़ दिया है।

डॉक्टर—अच्छा आप भंगियों को नहीं छूते ?

पंचकौड़ीदास—हम तो इनकी छाया से भी बचते हैं।

डॉक्टर—(मुस्कराते हुए) आपको पता है, मैं कौन हूँ ?

पंचकौड़ीदास—आप… आप ठहरे बड़े आदमी

डॉक्टर—मैं भी जात का भंगी हूँ

पंचकौड़ीदास—भंगी… ?

डॉक्टर—हाँ भंगी। जब तक भंगी रहा तब तक लोगों ने मुझे इसी तरह ठुकराया जैसे इस गरीबनी को आप ठुकरा रहे हैं। मैं जब तक हिन्दू था

भगवान् का भक्त था। चोटी रखता था। भजन गाता था तब तक अछूत था। ईसाई बन जाने से मानो मेरी काया ही बदल गई। आप लोग अब मेरे पैरों पड़ते हैं—घर में बुलाते हैं—मेरे हाथ की दवा पीते हैं। (रधिया की माँ से) चलो बहन मैं तुम्हारी बच्ची का इलाज करूँगा।

[डॉक्टर और रधिया की माँ चले जाते हैं।]

[पंचकौड़ीदास हक्का-बक्का होकर रह जाता है।]

[कुछ मिनट के बाद]

पंचकौड़ीदास—सुनती हो लछुआ की अम्माँ!

पंचकौड़ीदास की पत्नी—(आकर) क्या बात है—क्या हो गया? क्यों शोर मचा रखा है?

पंचकौड़ीदास—अरी अपना तो धर्म नष्ट हो गया! इन अंग्रेजी कपड़ों में पता ही नहीं चला कि डॉक्टर भंगी था।

पंचकौड़ीदास की पत्नी—भंगी!

पंचकौड़ीदास—हाँ भंगी! वह दवा फिंकवा दो।

रामदुलारी—लेकिन दवा से तो बच्चे को कुछ आराम है। धर्म क्या बच्चे से भी ज्यादा प्यारा है? फिर गाँव वाले क्या जानें कि वह डॉक्टर भंगी था। बात यों ही दबी रहने दो।

पंचकौड़ीदास—वह चुड़ैल रधिया की माँ सब जान गई है। वह गाँव भर में फूँक देगी।

रामदुलारी—उसे दो रुपए पकड़ाकर उसका मुँह बन्द कर देना। इन कमीनों का क्या? दो पैसे में इनकी इज्जत-आबरू सब छीन लो।

पंचकौड़ीदास—नहीं अब ये ऐसे नहीं रहे। उस गान्धी ने इन सबको बिगाड़ दिया है।

[अन्दर से आवाज आती है—'अम्मा-ओ-अम्मा!' दोनों अन्दर चले जाते हैं।]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—रधिया का मकान। रधिया एक चारपाई पर रोगी की हालत में लेटी हुई है। कन्हैया पास बैठा हुआ है। मकान में गरीबी के चिह्न तो हैं—लेकिन हर तरफ साफ-सुथरापन है।]

रधिया—जी बड़ा घबराता है कन्हैया!

कन्हैया—घबराओ नहीं रधिया! मौसी पंचकौड़ीदास के यहाँ गई है—वह आकर दवा देगा।

रधिया—वह चाण्डाल हमारे घर कभी नहीं आएगा। मैं तो उसकी दवा खाऊँगी भी नहीं। मुझे उसकी सूरत से घिन आती है।

कन्हैया—किसी से घृणा करना अच्छा नहीं रधिया!

रधिया—वे लोग भी तो हमें धिक्कारते हैं भैया?

कन्हैया—यह हमारी जाति का दुर्भाग्य है और क्या?

रधिया की माँ—बेटी भगवान् को सबकी चिन्ता है—देखो ना देवदूत की तरह डॉक्टरजी हमारे यहाँ आ गए हैं।

डॉक्टर—(रधिया की परीक्षा करता हुआ) घबराओ नहीं बेटा! मैं तुम्हें जल्दी अच्छा कर दूँगा। (रधिया की माँ से) थोड़ा पानी गरम करो। इंजेक्शन लगाना होगा।

[डॉक्टर इंजेक्शन की तैयारी करता है। रधिया की माँ चली जाती है।]

डॉक्टर—(कन्हैया को देखकर) जान पड़ता है आपको कहीं देखा है।

कन्हैया—आप शायद लाहौर से आए हैं? मैं वहीं का रहने वाला हूँ।

डॉक्टर—मेरे एक साथी डॉक्टर की शक्ल आपसे मिलती है। वे बेचारे फौजी नौकरी में चले गए और लौटकर नहीं आए।

कन्हैया—हाँ मेरे एक भाई डॉक्टर थे। फौज की नौकरी में भी थे। उसका कोई समाचार नहीं मिला।

डॉक्टर—वह बचपन से मेरे मित्र थे। तुम नहीं जानते—मैं भी उन्हीं अछूत कहे जाने वालों में था—लेकिन लोगों के अत्याचारों ने मुझे तंग कर

लिया। ईसाई हो जाने पर अब सभी मुझे आदर देते हैं।

कन्हैया—लेकिन अछूत से ईसाई हो जाना तो इस बीमारी का इलाज नहीं डॉक्टर साहब! हमें तो ऊँची जाति वालों के हृदय बदलने की ओर अछूत कही जाने वाली जातियों का रहन-सहन बदलने की जरूरत है। मेरे जैसे पगलों को दुतरफा लड़ाई करनी पड़ती है—इधर इनकी गिरी हुई आत्मा को उठाना पड़ता है—उधर उनके अत्याचारी हृदय को बदलने की कोशिश करनी पड़ती है।

डॉक्टर—अर्थात् आप दोनों का सुधार कर रहे हैं।

[रधिया की माँ पानी लेकर आती है। डॉक्टर इंजेक्शन लगाता है। इतने में पंचकौड़ीदास आता है।]

पंचकौड़ीदास—(डॉक्टर से) डॉक्टर साहब! मेरे लड़के की हालत फिर बिगड़ गई है। आप इसी समय चलने की कृपा करें।

डॉक्टर—लेकिन मैं तो भंगी हूँ—और मेरी दवा से तो आपका धर्म·

पंचकौड़ीदास—मुझ पर दया करो डॉक्टरजी! मैं भूल में था।

डॉक्टर—आपके घर जाने से मेरा धर्म नष्ट होगा। मैं नहीं जाऊँगा। आपने मेरी एक बहन का अपमान किया है।

रधिया की माँ—सेठजी ने मेरे घर आकर अपना धर्म तो भ्रष्ट कर ही लिया।

डॉक्टर—सेठ तो मुझे अपने घर बुलाकर और छूकर ही इनका धर्म जाता रहा।

पंचकौड़ीदास—महाराज क्षमा!

रधिया—मनुष्य का धर्म दया करना है—और डॉक्टर का विशेषकर। ये अपना धर्म भूल गए, लेकिन आप अपना धर्म नहीं भूलिए। जाइए—इनके लड़के के जाकर प्राण बचाइए।

कन्हैया—(पंचकौड़ीदास से) देखा जिन्हें आप नीच कहते हैं उनका हृदय कितना ऊँचा होता है?

डॉक्टर—लेकिन सेठजी, आप मेरी बहन के पैर छूएँ तभी मैं आपके

घर चलूँगा।

[पं० कौड़ीदास रधिया की माँ के पैर में गिरते हैं। रधिया की माँ झुक जाती है]

रधिया की माँ—आप क्यों मुझे पाप में घसीटते हैं? पंडितजी! कुछ भी हो हमारे लिए तो आप सदा बड़े हैं।

कन्हैया—(पंडितजी को उठाता है) सुबह का भूला शाम को भी घर लौट आए तो वह भूला नहीं कहलाता।

[पटाक्षेप]